चन्द्रालोक

(पञ्चम मयूख)

[बी० ए० द्वितीय वर्ष के परिवर्तित नवीन पाठ्यक्रम में निर्धारित
अलङ्कार एवं छन्दों का विवेचन]

डा० पारसनाथ द्विवेदी
एम० ए०, पी-एच० डी०, व्याकरण-साहित्याचार्य
आगरा कालेज, आगरा

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

चन्द्रालोक

पञ्चम मयूख

चन्द्रालोक

(पञ्चम मयूख)

[बी० ए० द्वितीय वर्ष के परिवर्त्तित नवीन पाठ्यक्रम में निर्धारित
अलङ्कार एवं छन्दों का विवेचन]

डा० पारसनाथ द्विवेदी

एम० ए०, पी-एच० डी०, व्याकरण-साहित्याचार्य

आगरा कालेज, आगरा

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

प्रकाशक
विनोद पुस्तक मन्दिर
कार्यालय : रांगेय राघव मार्ग, आगरा–२
बिक्री-केन्द्र : हॉस्पिटल रोड, आगरा–३

प्रथम संस्करण १९७५/७६
मूल्य : २.५०

मुद्रण : कैलाश प्रिंटिंग प्रेस, आगरा–२
[०१५१]

प्राक्कथन

भारतीय विश्वविद्यालयों में बी० ए० के पाठ्यक्रम में कुछ अलङ्कार एवं छन्द निर्धारित किये गये हैं। आगरा एवं गोरखपुर विश्वविद्यालय में चन्द्रालोक पञ्चम मयूख से कुछ अलङ्कार निर्धारित हैं। पाठ्यक्रम में निर्धारित अलङ्कारों का विशद विवेचन इस पुस्तक में किया गया है। इसमें अलङ्कारों के लक्षण एवं उदाहरणों के संगमन को विशद रूप से समझाया गया है। कहीं कहीं विषय की स्पष्टता एवं सरलता की दृष्टि से अन्य उदाहरण भी दिये गये हैं। प्रत्येक अलङ्कार के विवेचन के पश्चात् समान प्रतीत होने वाले अलङ्कारों का तुलनात्मक विवेचन भी किया गया है।

पुस्तक के अन्त में उक्त विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम मे निर्धारित छन्दों का सोदाहरण लक्षण दिया गया है। छन्दों के लक्षण छन्दोमञ्जरी एवं वृत्तरत्नाकर से लिए गये हैं और उदाहरण अन्य ग्रन्थों से लिए गये हैं। छन्दों को स्पष्ट करने की दृष्टि से कई अतिरिक्त उदाहरण भी दिये गये हैं।

प्रस्तुत पुस्तक बी० ए० के परीक्षार्थियों की उपयोगिता को ध्यान में रखकर तैयार की गई है। पाठ्यक्रम से सम्बन्धित सभी अलङ्कार एवं छन्द इस पुस्तक में विवेचित हैं। छात्र अपने विश्वविद्यालय में निर्धारित अलङ्कारों एवं छन्दों का अध्ययन करें। इस पुस्तक की त्रुटियों एवं न्यूनताओं के लिए क्षमा-याचना करते हुए पाठक महानुभावों से प्रार्थना है कि वे उन्हें सूचित करने की कृपा करेंगे जिससे अग्रिम संस्करण में उसका परिमार्जन किया जा सके। आशा है कि यह पुस्तक बी० ए० के परीक्षार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

—पारसनाथ द्विवेदी

विषय-सूची

'अलङ्कार'

पुष्पाङ्कित अलङ्कार आगरा विश्वविद्यालय में निर्धारित हैं।

*पुष्पाङ्कित अलङ्कार आगरा विश्वविद्यालय में निर्धारित हैं।

*पुष्पाङ्कित अलङ्कार एवं छन्द आगरा विश्वविद्यालय में निर्धारित हैं।

*पुष्पाङ्कित छन्द आगरा विश्वविद्यालय में निर्धारित हैं ।

अलंकार-परिचय

(क) आगरा विश्वविद्यालय में निर्धारित अलङ्कार—

अनुप्रास, यमक, चित्र, उपमा, अनन्वय, रूपक, अपह्नुति, उत्प्रेक्षा, भ्रान्ति, सन्देह, अतिशयोक्ति, तुल्ययोगिता, दीपक, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त, निदर्शना व्यतिरेक, समासोक्ति, श्लेष, अप्रस्तुतप्रशंसा, अर्थान्तरन्यास, विभावना, विशेषोक्ति, परिसंख्या, प्रतीप, तद्गुण।

(ख) गोरखपुर विश्वविद्यालय में निधारित अलङ्कार—

छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास, लाटानुप्रास, यमक, उपमा, उपमेयोपमा, अनन्वय, रूपक, अपह्नुति, परिणाम, उल्लेख, उत्प्रेक्षा, स्मृति, भ्रान्ति, सन्देह काव्यलिङ्ग, परिकर, अतिशयोक्ति (भेदातिशयोक्ति तथा रूपकातिशयोक्ति को छोड़कर), तुल्ययोगिता, दीपक, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त, निदर्शना, व्यतिरेक, समासोक्ति, अर्थश्लेष, भङ्गश्लेष, अप्रस्तुतप्रशंसा, अर्थान्तरन्यास, व्याजस्तुति, विरोधाभास, विभावना, विशेषोक्ति, कारणमाला, एकावली, मालादीपक, परिसंख्या।

चन्द्रालोकः

पञ्चमो मयूखः

अथालंकाराः

शब्दार्थयोः प्रसिद्धया वा कवेः प्रौढ़िवशेन वा ।
हारादिवदलङ्कारः सन्निवेशो मनोहरः ॥१॥

काव्यलक्षण में कहे गये गुण-दोष आदि का निरूपण करने के पश्चात् अब अलङ्कारों का विवेचन करते हैं जिस प्रकार मनुष्य के शरीर में हार आदि अलङ्कार शरीर की शोभा बढ़ाते हैं उसी प्रकार अनुप्रास, उपमा आदि अलङ्कार भी काव्य की शोभा को बढ़ाते हैं। इसी बात को जयदेव निम्न शब्दों में कहते हैं—

मनुष्यों के द्वारा जिस प्रकार समुचित स्थान पर एवं उचित ढंग से पहने हुए अलङ्कार शरीर की शोभा को बढ़ाते हैं उसी प्रकार आलङ्कारिक कवियों की प्रसिद्धि अथवा कल्पना की प्रौढ़ि से चमत्कारजनक शब्द एवं अर्थ का सुन्दर सन्निवेश काव्य-शरीर की शोभा को बढ़ाता हुआ 'अलङ्कार' कहलाता है ॥१॥

भाव यह कि 'अलङ्करोति इति अलङ्कारः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार शोभित करने वाले धर्म को अलङ्कार कहते हैं। जिस प्रकार शरीर पर जब अलङ्कारों (हार आदि) का उचित एवं मनोहर रीति से सन्निवेश किया जाता है तभी वे शोभा को बढ़ाते हैं अन्यथा हास्यप्रद होते हैं, उसी प्रकार अनुप्रास-उपमादि अलङ्कारों का यथोचित सन्निवेश ही शोभावह होता है। अग्निपुराण में तो अलङ्कार से रहित वाणी को विधवा स्त्री के समान दुर्भगा बतलाया गया है—

"अथालङ्काररहिता विधवेव सरस्वती'

(अग्निपुराण)

भामह अलङ्कार का महत्त्व बताते हुए कहते हैं कि कामिनी का मुख सुन्दर होने पर भी अलङ्कार से रहित होने पर सुशोभित नहीं होता—

'न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम्'

(काव्यालङ्कार)

१—अनुप्रासः

(क) छेकानुप्रासः

स्वरव्यञ्जनसन्दोहव्यूहा मन्दोहदोहदा ।
गौर्जगज्जाग्रदुत्सेका छेकानुप्रासभासुरा ॥२॥

(ख) वृत्यनुप्रासः

आवृत्तवर्णसम्पूर्णं वृत्यनुप्रासवद्वचः ।
अमन्दाननन्दसन्दोहस्वच्छन्दास्पदमन्दिरम् ॥३॥

---

(१) अनुप्रास अलङ्कार

१—जहाँ पर स्वरों की विषमता रहने पर भी वर्ण अथवा शब्दों की समानता पाई जावे, वहाँ 'अनुप्रास' अलंकार होता है। अनुप्रास अलङ्कार के पाँच भेद होते हैं—छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास, लाटानुप्रास, स्फुटानुप्रास और अर्थानुप्रास। अब प्रत्येक का अलग-अलग लक्षण एवं उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। प्रथम छेकानुप्रास का लक्षण कहते हैं—

(क) छेकानुप्रास

स्वरव्यञ्जनसन्दोहव्यूहा मन्दोहदोहदा ।
गौर्जगज्जाग्रदुत्सेका छेकानुप्रासभासुरा ॥

स्वर और व्यञ्जनों की आवृत्ति से युक्त, जगत् (संसार) में प्रसिद्ध उत्कर्ष वाली वाणी (गौः) 'छेकानुप्रास' से शोभित होती है। अर्थात् जहाँ पर स्वर अथवा व्यञ्जनों की एक बार आवृत्ति होती है वहाँ 'छेकानुप्रास' अलङ्कार होता है। जैसे—

उक्त श्लोक में 'स्वरव्यञ्जन' में अकार स्वर की आवृत्ति 'सन्देहव्यूह' तथा 'जगज्जाग्रत्' में व्यञ्जन की आवृत्ति और 'मन्दोहदोहदा' में स्वर और व्यञ्जन दोनों की आवृत्ति होने से 'छेकानुप्रास' अलंकार है।

(ख) वृत्यनुप्रास

आवृत्तवर्णसम्पूर्णं वृत्यनुप्रासवद्वचः ।

जहाँ पर एक या अनेक वर्णों की कई बार आवृत्ति होती है, उसे 'वृत्यनुप्रास' कहते हैं जैसे—

'अमन्दानन्दसन्दोहस्वच्छन्दास्पदमन्दिरम्'

(ग) लाटानुप्रासः

लाटानुप्रासभूर्भिन्नाभिप्राया पुनरुक्तता ।
यत्र स्यान्न पुनः शत्रोर्गजितं तज्जितं जितम् ॥४॥

(घ) स्फुटानुप्रासः

श्लोकस्यार्धे तदर्धे वा वर्णावृत्तिर्यदि ध्रुवा ।
तथा मता मतिमतां स्फुटानुप्रासता सताम् ॥५॥

इस उदाहरण में 'न्द' की कई बार आवृत्ति हुई है अतः यहाँ पर 'वृत्यनुप्रास' है ।

(ग) लाटानुप्रास

'लाटानुप्रासभूर्भिन्नाभिप्राया पुनरुक्तता ।'

अर्थात् जहाँ पर भिन्न अभिप्राय वाली पुनरुक्ति होती है, उसे 'लाटानुप्रास' अलंकार कहते हैं । लाट (गुजरात) देश के लोगों को अत्यन्त प्रिय होने के कारण इसे 'लाटानुप्रास' कहते हैं । उदाहरण जैसे—

"यत्र स्यान्न पुनः शत्रोर्गजितं तज्जितं जितम् ।"

जहाँ पर शत्रु की पुनः गर्जना न हो सके अर्थात् जहाँ शत्रु पुनः गरज न सके, वही जीतना जीतना है अर्थात् सफल है । वहाँ पर 'जितम् जितम्' यह पुनरुक्ति है किन्तु दूसरे 'जितम्' का अर्थ 'सफलता' है । अतः दूसरा 'जितम्' पद सफलता अर्थ का बोधक होने के कारण यहाँ 'लाटानुप्रास' है ।

अब यह कि यहाँ पर दो 'जितम्' शब्द आये हैं किन्तु दोनों का अभिप्राय अलग है । एक 'जितम्' शब्द का अभिप्राय जीतना और दूसरे 'जितम्' का अभिप्राय 'सफलता' है । अतः इसे 'लाटानुप्रास' कहेंगे ।

(घ) स्फुटानुप्रास

जहाँ पर श्लोक के अर्ध भाग में अथवा उस श्लोकार्ध के अर्ध भाग में अर्थात् पाद में यदि वर्णों की आवृति निश्चित हो तो विद्वानों ने उसे 'स्फुटानुप्रास' कहा है । इस अनुप्रास में पाद (चरण) के अन्त में समान वर्णों का होना आवश्यक है । इसे 'अन्त्यानुप्रास' भी कहते हैं ।

उदाहरण, जैसे—

"तथा मता मतिमतां स्फुटानुप्रासता सताम् ।"

यहाँ पर आदि से अन्त तक 'त' और 'म' अनेक बार आवृति हुई है और

(ङ) अर्थानुप्रासः

उपमेयोपमानादावर्थानुप्रास इष्यते ।
चन्दनं खलु गोविन्दचरणद्वन्द्ववन्दनम् ॥६॥

२—यमकालङ्कारः

आवृत्तवर्णस्तबकं स्तवकन्दाङ्कुरं कवेः ।
यमकं प्रथमा धुर्यमाधुर्यवचसो विदुः ॥७॥

श्लोक के तृतीय एवं चतुर्थ चरणों के अन्त में 'ताम्' की आवृत्ति है अतः यहाँ 'स्फुटानुप्रास' है ।

(ङ) अर्थानुप्रास

जयदेव ने अर्थानुप्रास का लक्षण निम्न प्रकार दिया है—

"उपमेयोपमानादावर्थानुप्रास इष्यते ।"

अर्थात् उपमान और उपमेय में वर्णों की आवृत्ति होने पर 'अर्थानुप्रास' कहलाता है । भाव यह कि जहाँ पर उपमान और उपमेय में वर्णो की समानता हो वहाँ 'अर्थानुप्रास' होता है ।

"चन्दनं खलु गोविन्दचरणद्वन्द्ववन्दनम् ।"

अर्थात् भगवान् कृष्ण चरण-युगल की वन्दना ही चन्दन है । यहाँ पर चन्दन रूप उपमान और गोविन्द-चरण-वन्दन रूप उपमेय में 'न्द' की आवृत्ति (समानता) होने से अर्थानुप्रास अलंकार है ।

२—यमक अलङ्कार

२—चन्द्रालोककार जयदेव ने 'यमक' अलङ्कार का लक्षण इस प्रकार किया है कि श्रेष्ठ मधुरभाषी विद्वान् कवियों की प्रशंसा रूप बीज के अङ्कुर वाले वर्ण समूह की आवृत्ति को 'यमक' अलङ्कार कहते हैं । जैसे उपर्युक्त श्लोक में 'स्तवक-स्तवक' और 'माधुर्य-माधुर्य' पदों में वर्णों की आवृत्ति होने से 'यमक' अलङ्कार है ।

विमर्श—भाव यह कि जहाँ पर वर्ण समूह अर्थात् वर्णों की आवृत्ति पुनरुक्ति हो, वहाँ यमक अलङ्कार होता है । तात्पर्य यह कि जहाँ पर दो सार्थक पदों की पुनरावृत्ति हो किन्तु उनमें दोनों पदों का अर्थ अलग-अलग हो, वहाँ यमक अलङ्कार होता है और जहाँ दोनों पदों में एक पद सार्थक और दूसरा पद निरर्थक होता है वहाँ पर भी 'यमक' अलङ्कार होता है । जैसे—

(३) चित्रकाव्यालङ्कारः

काव्यवित् प्रवरैश्चित्रं खड्गबन्धादि लक्ष्यते ।
तेष्वाद्यमुच्यते श्लोकद्वयी सज्जनरञ्जिका ॥८॥
कामिनीव भवत्खड्गलेखा चारुकरालिका ।
काश्मीरसेवा रक्ताङ्गी शत्रुकण्ठान्तिकाश्रिता ॥९॥

आवृत्तवर्णस्तबकं स्तवकन्दाङ्कुरं कवेः ।
यमकं प्रथमाधुर्यमाधुर्यवचसो विदुः ॥

'यमक' अलङ्कार में दो प्रकार से पदों की आवृत्ति होती है अर्थात् जब दो ऐसे पदों की पुनरावृत्ति हो जिसमें दोनों पद सार्थक हों (अर्थ रखते हों) किन्तु उनका अर्थ अलग-अलग हो वहाँ 'यमक' अलङ्कार होता है । जैसे—"नव-पलाश-पलाशवनं पुरः' इस उदाहरण में 'पलाश-पलाश' दोनों पद सार्थक हैं । प्रथम 'पलाश' शब्द का अर्थ 'नव-किसलय' और द्वितीय 'पलाश' शब्द का अर्थ पलाश का वृक्ष' किया है, अतः यहाँ 'यमक' अलंकार है ।

दूसरे जहाँ पर दो ऐसे पदों की पुनरावृत्ति हो जिसमें एक पद सार्थक और दूसरा पद निरर्थक हो वहाँ पर भी 'यमक' अलङ्कार होता है । जैसे—उपर्युक्त उदाहरण में 'स्तबक-स्तवक' में प्रथम पद सार्थक और दूसरा पर निरर्थक है और 'माधुर्य-माधुर्य' में प्रथम पद निरर्थक और दूसरा सार्थक हैं अतः यहाँ दोनों जगह 'यमक अलङ्कार' है ।

अनुप्रास और यमक—

'लाटानुप्रास' अलङ्कार में भी पदों की आवृत्ति होती है और 'यमक' अलङ्कार में भी पदों की आवृत्ति होती है किन्तु दोनों में अन्तर यह होता कि लाटानुप्रास में पुनरावृत्त दोनों पदों में अर्थभेद नहीं होता अर्थात् दोनों पदों का अर्थ एक ही होता है किन्तु उसका अभिप्राय (तात्पर्य) अलग-अलग होता है । यमक अलङ्कार में दोनों पदों में अर्थ का भेद होना अर्थात् अलग-अलग अर्थ होना आवश्यक है । अथवा कहीं-कहीं एक पद सार्थक होता है और दूसरा पद निरर्थक होता है । किन्तु जहाँ दोनों पद सार्थक हों वहाँ भिन्न (अलग-अलग) अर्थ होना आवश्यक है ।

(३) चित्र-काव्य-अलङ्कार

८—काव्य के तत्त्व को जानने वाले आलङ्कारिकों ने खड्गबन्ध, पद्मबन्ध

आदि चित्र काव्यों के लक्षण किये हैं। उनमें सज्जनों का मनोरञ्जन करने वाले दो श्लोकों से बनने वाले 'खड्गवन्ध' का स्वरूप कहते हैं।

"हे राजन्! शत्रुओं की कामिनी के समान आपकी खड्गलता चारुकरालिका काश्मीरसेका, रक्ताङ्गी और शत्रुकण्ठान्तिका है अर्थात् जिस प्रकार शत्रु की कामिनी सुन्दर कर (हाथ) और ललाट वाली (चारुकरालिका), केसर के लेप से युक्त, अनुराग से युक्त अङ्गों वाली (रक्ताङ्गी), और शत्रु के कण्ठ का आलिङ्गन करने वाली होती है उसी प्रकार आपकी तलवार सुन्दर एवं तीक्ष्ण धार वाली (चारुकरालिका), कुङ्कुम (केसर) के लेप के समान रक्त से लिप्त (लाल) अङ्गों वाली और शत्रुओं के गले का आलिङ्गन करने वाली है।"

उक्त दोनों श्लोकों से 'खड्गवन्ध' इस प्रकार बनता है—

ता
श्रि
< शत्रुकण्ठान्ति | का | रक्ताङ्गी >
से
र
श्मी
< लेखाचारुकरालि | का | मिनीव भवत्खङ्ग >

ञ्जि	व्य
र	वि
न	त्प्र
ज्ज	व
स	रै
यी	श्चि
द्ध	त्रं
क	ख
श्लो	ङ्ग
ते	ब
च्य	न्धा
मु	दि
द्य	ल
ष्वा	क्ष्य

ते

(४) उपमालङ्कारः

उपमा यत्र सादृश्यलक्ष्मीरुल्लसति द्वयोः।
हृदये खेलतोरुच्चैस्तन्वङ्गीस्तनयोरिव ॥१०॥

---

(४) उपमा अलङ्कार

४—जहाँ पर उपमान और उपमेय की समानता की शोभा उल्लसित (विकसित) हो वहाँ 'उपमा' अलङ्कार होता है। जैसे सुन्दरी नायिका के वक्ष-स्थल पर छलकते एवं उठे हुए स्तन सुशोभित होते हैं।

विमर्श—जहाँ पर उपमान और उपमेय दोनों की समानता सहृदयों को आह्लादित करती है और वह चमत्कारजनक समानता स्पष्ट रूप से प्रकाशित (उल्लसित) होती है वहाँ 'उपमा' अलङ्कार होता है। भाव यह कि जहाँ पर उपमान और उपमेय दोनों का चमत्कार सादृश्य सहृदयों को आह्लादित कर दें और साथ ही स्पष्ट रूप से प्रकट भी हो वहाँ 'उपमा' अलङ्कार होता है। जैसे—

"उपमा यत्र सादृश्यलक्ष्मीरुल्लसति द्वयोः।"

अर्थात् जहाँ पर उपमान और उपमेय में समानता (सादृश्य) बताया जाता है वहाँ उपमा अलङ्कार होता है। उपमा अलङ्कार में चार तत्त्व आवश्यक होते हैं—

१—उपमेय—जिसकी समानता बताई जाती है उसे 'उपमेय' कहते हैं। जैसे—'मनोज्ञं मुखम्' (कमल के समान मुख सुन्दर है) इस उदाहरण में 'मुख' की समानता (कमल से) बताई जा रही है अतः मुख उपमेय है।

२—उपमान—जिससे समानता बताई जाय उसे 'उपमान' कहते हैं जैसे 'कमलमिव मनोज्ञं मुखम्' इस उदाहरण में कमल से (मुख की) समानता बताई जा रही है अतः 'कमल' उपमान है।

३—साधारण धर्म—उपमान और उपमेय में जो गुण (धर्म) समान रूप से रहता है उसे 'साधारण धर्म' कहते हैं। जैसे 'कमलमिव मनोज्ञं मुखम्' इस उदाहरण में मनोज्ञता (सुन्दरता) रूपी धर्म (गुण) उपमान (कमल) तथा उपमेय (मुख) दोनों में समान रूप से बताया जा रहा है अतः 'मनोज्ञ' (सुन्दरता) 'साधारणधर्म' है।

४—वाचक शब्द—जो शब्द एक दूसरे के साथ समानता का ज्ञान

(५) अनन्वयालङ्कारः

उपमानोपमेयत्वं यदेकस्यैव वस्तुनः ।
इन्दुरिन्दुरिवेत्यादौ भवेदेवमनन्वयः ॥११॥

कराता है उसे 'उपमावाचक शब्द' कहते हैं। जैसे—उक्त उदाहरण में 'इव' शब्द है। इव, यथा, वत्, तुल्य, समान, सदृश आदि उपमावाचक शब्द होते हैं।

इसी प्रकार उक्त उदाहरण में 'एक स्तन दूसरे स्तन समान शोभित होते हैं' यहाँ पर एक स्तन उपमान दूसरा स्तन उपमेय है, सादृश्यलक्ष्मी साधारणधर्म और 'इव' उपमावाचक शब्द हैं अत यहाँ 'उपमा' अलङ्कार है।

चन्द्रालोक के अर्थालङ्कारों के व्याख्याकार अप्पयदीक्षित ने उपमा का निम्नलिखित उदाहरण दिया है—

'हंसीव कृष्ण ? ते कीर्त्तिः स्वर्गङ्गामवगाहते।"

"हे कृष्ण ! तुम्हारी कीर्त्ति हंसिनी की तरह आकाशगङ्गा में अवगाहन अर्थात् स्नान कर रही है।" यहाँ पर 'कीर्त्ति' उपमेय, 'हंसी' उपमान, 'इव' उपमावाचक शब्द और 'स्वर्गङ्गावगाहन' (आकाशगङ्गा में स्नान) साधारण धर्म है। अतः यहाँ पूर्णोपमा अलंकार है।

उपमा का महत्त्व

अप्पयदीक्षित ने 'उपमा' का महत्त्व बताते हुए लिखा है कि 'उपमा' समस्त सादृश्यमूलक अलंकारों का आधार है। 'उपमा वह नही है जो अनेकविधि विचित्र अलङ्कार-भूमिका में काव्य-मञ्च पर आकर नृत्य करती हुई काव्य-रसिकों को आनन्दित करती है।

उपमैका शैलूषी सम्प्राप्तः चित्रभूमिकाभेदान् ।
रञ्जयति काव्यरङ्गे नृत्यन्ती तद्विदां चेतः ॥

(चित्रमीमांसा पृ० ६)

५—अनन्वय अलङ्कार

5—"जहाँ पर एक ही वस्तु उपमान और उपमेय दोनों हों, वहाँ अनन्वय अलङ्कार होता है। जैसे चन्द्रमा चन्द्रमा के समान है, यहाँ पर 'अनन्वय अलङ्कार है।

६—उपमेयोपमालङ्कारः

पर्यायेण द्वयोस्तच्चेदुपमेयोपमा मता।
धर्मोऽर्थ इव पूर्णश्रीरर्थो धर्म इव त्वयि ॥१२॥

विमर्श—जहाँ पर उपमेय ही उपमान हो जाता है वहाँ 'अनन्वय' अलङ्कार होता है। चन्द्रालोक में अनन्वय का लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

"उपमानोपमेयत्वं यदेकस्यैव वस्तुनः"

अर्थात् जहाँ पर एक ही वस्तु को उपमान तथा उपमेय बताया जाय वहाँ 'अनन्वय' अलङ्कार होता है। जैसे—'इन्दुरिन्दुरिव' (चन्द्रमा चन्द्रमा के समान) इस उदाहरण में उपमेय चन्द्र ही उपमान भी है अतः यहाँ 'अनन्वय' अलङ्कार है।

अप्पयदीक्षित ने अनन्वय का उदाहरण 'इन्दुरिन्दुरिव श्रीमान्' दिया है। यहाँ पर चन्द्रमा उपमेय और चन्द्रमा ही उपमान, श्रीमान् साधारणधर्म और 'इव' वाचक शब्द है।

अन्य उदाहरण—

गगनं गगनाकारं सागरः सागरोपमः।
रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव ॥

अर्थात् आकाश (गगन) आकाश के समान है, समुद्र समुद्र के समान है और राम-रावण का युद्ध राम-रावण के ही युद्ध के समान है। यहाँ पर प्रथम गगन, सागर और राम-रावण- युद्ध उपमेय तथा द्वितीय गगन, सागर और राम-रावण-युद्ध उपमान होने से अनन्वय अलङ्कार है।

उपमा और अनन्वय—उपमा में उपमान और उपमेय अलग-अलग होते हैं तथा अनन्वय में दोनों एक होते हैं।

६—उपमेयोपमा अलङ्कार

६—जहाँ पर क्रमशः उपमेय को उपमान और उपमान को उपमेय बना दिया जाय वहाँ 'उपमेयोपमा' अलङ्कार होता है। जैसे—तुझमें धर्म अर्थ के समान और अर्थ धर्म के समान पूर्ण शोभायुक्त है।

विमर्श—उपमेयोपमा अलङ्कार में उपमान और उपमेय को क्रमशः एक दूसरे का उपमानोपमेय बना दिया जाता है अर्थात् एकही वाक्य में क्रमशः उपमान को उपमेय और उपमेय को उपमान बना दिया जाता है अतः उसे 'उपमेयोपमा' कहते हैं। जैसा कि चन्द्रालोककार ने कहा है—

७—रूपकालङ्कारः

यत्रोपमानचित्रेण सर्वथाप्युपरज्यते ।
उपमेयमयी भित्तिस्तत्र रूपकमिष्यते ॥१३॥

'पर्यायेण द्वयोस्तच्चेदुपमेयोपमा मता"
'धर्मोऽर्थ इव पूर्णश्रीरर्थो धर्म इव त्वयि"

अर्थात् जहाँ क्रमशः उपमेय को उपमान और उपमान को उपमेय बना दिया जाता है वहाँ 'उपमेयोपमा' अलंकार होता है । जैसे—

'हे राजन् ! आप में धर्म अर्थ के समान और अर्थ धर्म के समान पूर्ण समृद्ध है ।' यहाँ पर प्रथम भाग में धर्म उपमेय और अर्थ उपमान है तथा द्वितीय भाग में अर्थ उपमेय और धर्म उपमान है । अतः यहाँ 'उपमेयोपमा' अलंकार है ।

उपमा और उपमेयोपमा—

उपमा एक वाक्य में होती है तथा उपमान एवं उपमेय एक-एक होते है और उपमा भी एक होती है जबकि 'उपमेयोपमा' में दो वाक्य होते हैं और दोनों में उपमान एवं उपमेय अलग-अलग होते हैं । पहले वाक्य में जो उपमान होता है वह दूसरे में उपमेय बन जाता है और पहले का उपमेय दूसरे का उपमान है । और दो उपमाएँ होती है ।

७—रूपक अलङ्कार

७—"जहाँ पर उपमान रूप चित्र के द्वारा उपमेय रूपी भित्ति (दीवाल) सर्वथा रंगी होती है वहाँ 'रूपक' अलङ्कार होता है ।"

विमर्श—रूपक अलङ्कार वहाँ होता है जहाँ पर उपमेय में उपमान का अभेद आरोप होता है । चन्द्रालोककार जयदेव ने रूपक की परिभाषा तथा उदाहरण एक ही श्लोक में दिया है—

यत्रोपमानचित्रेण सर्वथाप्युपरज्यते'
उपमेयमयी भित्तिस्तत्र रूपकमिष्यते"

अर्थात् जिस प्रकार चित्र भित्ति (दीवाल) को व्याप्त कर लेता है दोनों में भेद नहीं रहता, उसी प्रकार जहाँ पर उपमान उपमेय को व्याप्त कर लेता है अर्थात् उपमान उपमेय में अभेद आरोप होता है उसे 'रूपक' अलङ्कार कहते हैं । किन्तु यह अभेद-प्रतीति वास्तविक नहीं, बल्कि कल्पित होती है ।

(क) सोपाधिरूपक

समानधर्मयुक्साध्यारोपात्सोपाधिरूपकम् ।
उत्सिक्तक्षितिभृल्लक्ष्यपक्षच्छेदपुरःसरः ॥१४॥

जैसे उपर्युक्त श्लोक ही उदाहरण है। 'उपमानचित्रेण' अर्थात् उपमान रूपी चित्र से यहाँ पर 'उपमान ही चित्र है' उपमान और चित्र में अभेदारोप है। इसी प्रकार 'उपमेयभित्तिः' (उपमेय रूपी भित्ति) में उपमेय ही भित्ति है यहाँ पर भी अभेद आरोप है अतः यह 'रूपक अलङ्कार' का उदाहरण है।

चन्द्रालोककार जयदेव ने रूपक के चार भेद वताये हैं—(१) सोपाधि-रूपक (२) साहश्यरूपक (३) आभासरूपक और (४) रूपितरूपक। क्रमशः उनका लक्षण और उदाहरण प्रस्तुत करते हैं—

(क) सोपाधिरूपक

"जहाँ पर साधारण धर्म के सम्वन्ध से अभेद आरोप संभव हो, वहाँ 'सोपाधिरूपक' होता है। जैसे—वह राजा उन्मत्त क्षितिभृत् (पर्वतों और राजाओं) के लक्ष्यभूत पक्ष (पंख तथा सहायक) को छेदन (काटने तथा विनाश) करने में इन्द्र है।"

विमर्श—सोपाधिरूपक उसे कहते हैं जहाँ पर साधारण धर्म के कारण उपमान और उपमेय में अभेदारोप होता है—

"समानधर्मयुक्साध्यारोपात्सोपाधिरूपकम्"

सोपाधिरूपक का उदाहरण चन्द्रालोककार ने यह दिया है—

'उत्सिक्तक्षितिभृल्लक्ष्यपक्षच्छेदपुरःसरः।'

यह राजा पर्वतरूपी राजाओं के लक्ष्यभूत पंखरूपी सहायकों के काटने में इन्द्र है। अर्थात् जैसे इन्द्र पर्वतों के पंख काटने में समर्थ है उसी प्रकार राजा भी दर्पयुक्त राजाओं के सहायकों के विनाश में समर्थ है। यहाँ पर 'उत्सिक्त' (उन्नत एवं दर्पयुक्त) साधारण धर्म है। यह पर्वत तथा शत्रु राजा दोनों में पाया जाता है अतः यहाँ पर दोनों में साधारण धर्म 'उत्सिक्त' के होने के कारण अभेदारोप होने से 'सोपाधिरूपक' है। इसी को 'परम्परितरूपक' भी कहते हैं।

(ख) सादृश्यरूपक
पृथक्कथितसादृश्यं दृश्यं सादृश्यरूपकम् ।
उल्लसत्पञ्चशाखस्ते राजते भुजभूरुहः ॥१५॥
(ग) आभासरूपक
स्यादङ्गयष्टिरित्येवंविधमाभासरूपकम् ।"

(ख) सादृश्क रूपक

"जहाँ पर उपमान और उपमेय दोनों में भिन्न-भिन्न पदों से समानता बताई जाय वहाँ 'सादृश्यरूपक' होता है। जैसे पाँच उँगली रूपी पाँच शाखाओं वाला आपका हाथ रूपी वृक्ष शोभित हो रहा है।

विमर्श—जयदेव ने सादृश्यरूपक का लक्षण निम्न प्रकार किया है—

"पृथक्कथितसादृश्यं दृश्यं सादृश्यरूपकम् ।"

अर्थात् जहाँ पर सादृश्य (समानता) अलग-अलग पदों द्वारा बताया जाता है वहाँ 'सादृश्य रूपक' होता है। जैसे—

"उल्लसत्पञ्चशाखस्ते राजते भुजभूरुहः ।"

अर्थात् पांच उंगलियों रूपी शाखाओं वाला आपका भुजा रूपी वृक्ष शोभित हो रहा है। यहाँ पर शाखा और वृक्ष दोनों का सादृश्य अलग-अलग पदों द्वारा बताया गया है अतः यहाँ 'सादृश्य रूपक' है। इसी को 'सांगरूपक' भी कहते है।

(ग) आभास रूपक

चन्द्रालोककार जयदेव ने आभास रूपक का कोई लक्षण नहीं दिया है केवल उदाहरण ही दिया है। अलङ्कार के नाम से ही लक्षण समझ लेना चाहिए। तदनुसार आभासरूपक का लक्षण होगा—

"जहाँ पर उपमेय में उपमान का आभास होता है वहाँ आभास रूपक होता है।" जैसे:—

"स्यादङ्गयष्टिरित्येवंविधमाभासरूपकम्" ।

इस उदाहरण में (अङ्गयष्टि) में उपमेय अङ्ग में उपमान यष्टि (छड़ी) का आरोप किया गया है किन्तु यहाँ पर अङ्ग में दुबलेपन के आरोप का आभास हो रहा है अतः यहाँ आभास रूपक है।

(घ) रूपितरूपक

अङ्गयष्टिधनुर्वल्लीत्यादिरूपितरूपकम् ।।१६।।

(८) परिणामालङ्कारः

परिणामोऽनयोरस्मिन्नभेदः पर्यवस्यति ।
कान्तेन पृष्टा रहसि मौनमेवोत्तरं ददौ ।।१७।।

(घ) रूपित रूपक

रूपितरूपक का भी लक्षण चन्द्रालोककार ने नहीं दिया है। केवल उदाहरण के आधार पर उसका लक्षण निम्न प्रकार है—

जहाँ पर आरोपित पदों में पुनः आरोप किया जाता है वहाँ 'रूपितरूपक' होता है।" जैसे—

"अङ्गयष्टिर्धनुर्वल्लीत्यादिरूपितरूपकम्" ।

यहाँ 'अङ्गयष्टिर्धनुर्वल्ली' उदाहरण में पहले अङ्ग में यष्टि का और धनुष में वल्ली का आरोप किया गया है फिर आरोगित 'अङ्गयष्टि' में 'धनुर्वल्ली' का आरोप किया गया है। (अङ्गयष्टि ही धनुर्वल्ली है)। अतः यहाँ 'रूपितरूपक' अलंकार है।

पूरा उदाहरण निम्न प्रकार है—

'अङ्गयष्टिर्धनुर्वल्लीमादाय कुसुमायुधः ।
जगज्जयति यासां ताः कथं न सरसाः स्त्रियः ।।

उपमा और रूपक—

उपमा में उपमेय की उपमान से समानता बताई जाती है और रूपक में उपमेय में उपमान का आरोप किया जाता है। जैसे 'मुख चन्द्रमा के समान है' (मुखं चन्द्र इव) यह उपमा है और 'मुख रूपी चन्द्रमा' (मुखचन्द्र : शोभते) यह रूपक है।

८—परिणाम अलङ्कार

८—"जहाँ पर उपमान और उपमेय में अभेद क्रिया के सम्बन्ध से होता है वहाँ 'परिणाम' अलङ्कार होता है। जैसे—एकान्त में प्रियतम के पूछे जाने पर उसने मौन ही उत्तर दिया।"

(९) उल्लेखालङ्कारः

बहुभिर्बहुधोल्लेखादेकस्योल्लेखिता मता ।
स्त्रीभिः कामः प्रियैश्चन्द्रः कालः शत्रुभिरैक्षि सः ॥१८॥

विमर्श—चन्द्रालोककार ने परिणाम अलङ्कार का लक्षण इस प्रकार किया है—

"परिणामोऽनयोरस्मिन्नभेदः पर्यवस्यति ।"

अर्थात् जहाँ पर क्रिया पद में उपमान और उपमेय दोनों का अभेद (ऐक्य) सम्वन्ध होता है वहाँ 'परिणाम' अलंकार होता है । जैसे—

"कान्तेन पृष्टा रहसि मौनमेवोत्तरं ददौ ।"

अर्थात् प्रियतम के द्वारा अकेले में पूछे जाने पर उस नायिका ने मौन ही उत्तर दिया । यहाँ पर 'उत्तर' में 'मौन' का आरोप किया गया है क्योंकि 'ददौ' क्रिया के साथ 'मौन' का अन्वय नहीं वनता । अतः 'उत्तर' पद के साथ 'मौन' पद का अभेद सम्वन्ध मानकर 'ददौ' (दान) क्रिया के साथ अन्वय किया गया है अतः यहाँ पर 'परिणाम' अलङ्कार है ।

९—उल्लेख अलङ्कार

९—"जहाँ पर एक ही वस्तु का अनेक व्यक्तियों द्वारा अनेक प्रकार से वर्णन किया जाय वहाँ 'उल्लेख' अलंकार होता हैं जैसे—उसे (राजा को) स्त्रियों ने कामदेव, प्रियजनों ने चन्द्रमा और शत्रुओं ने काल के समान देखा ।"

विमर्श—उल्लेख अलङ्कार वहाँ होता है जहाँ पर अनेक धर्मों से युक्त एक पदार्थ का अनेक व्यक्तियों के द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार से वर्णन किया जाता है—

"बहुभिर्बहुधोल्लेखादेकस्योल्लेख इष्यते"

चन्द्रालोककार ने इसका उदाहरण यह दिया है—

"स्त्रीभिः कामः प्रियैश्चन्द्रः कालः शत्रुभिरक्षि सः"

अर्थात् उस राजा को स्त्रियों ने सौन्दर्य के कारण कामदेव के रूप में, प्रियजनों ने आनन्द देने के कारण चन्द्रमा के रूप में और शत्रुओं ने भय के कारण काल (यमराज) के रूप में देखा । इस प्रकार यहाँ पर एक ही राजा का भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के द्वारा भिन्न-भिन्न रूप में उल्लेख होने के कारण 'उल्लेख' अलंकार है ।

१०—अपह्नुत्यलङ्कारः

अतथ्यमारोपयितुं तथ्यापास्तिरपह्नुतिः ।
नायं सुधांशुः किं तर्हि व्योमगङ्गासरोरुहम् ।।१९।।

(क) पर्यस्तापह्नुतिः

पर्यस्तापह्नुतिर्यत्र धर्ममात्रं निषिध्यते ।
नायं शुधांशुः, किं तर्हि ? सुधांशुः प्रेयसीमुखम् ।।२०।।

१०—अपह्नुति अलंकार

१०—"जहाँ पर मिथ्या (असत्य) वस्तु का आरोप करने के लिए सत्य वस्तु का निषेध किया जाय वहाँ 'अपह्नुति' अलङ्कार होता है। जैसे—"यह चन्द्रमा नहीं है वल्कि आकाशगंगा में खिला हुआ कमल है" इस उदाहरण में असत्य वस्तु कमल का आरोप करने के लिए सत्य वस्तु चन्द्रमा का निषेध किया गया है । अतः यहाँ अपह्नुति अलङ्कार है ।

विमर्श—जहाँ वर्ण्य वस्तु (प्रकृत) में असत्य (अप्रकृत, मिथ्या) वस्तु का आरोप करने के लिए सत्य (प्रकृत) वस्तु का निषेध (गोपन) कर दिया जाय वहाँ 'अपह्नुति' अलङ्कार होता है ।

अतथ्यमारोपयितुं तथ्यापास्तिरपह्नुतिः ।

भाव यह कि जहाँ पर मिथ्या (असत्य) वस्तु के आरोप के लिए सत्य वस्तु को छिपा दिया जाता वहाँ 'अपह्नुति' अलङ्कार होता है । जैसे—

नायं सुधाँशुः किं तर्हि व्योमगङ्गासरोरुहम् ।

अर्थात् कोई व्यक्ति आकाश में चन्द्रमा को देखकर कहता है कि "यह चन्द्रमा नहीं है, तो फिर क्या है ? यह तो आकाशगङ्गा में खिला हुआ कमल है ।" इस उदाहरण में चन्द्रमा में (मिथ्याभूत) आकाशगङ्गा के कमल का आरोप करने के लिए वास्तविक चन्द्रमा का निषेध (गोपन) किया गया है । अतः 'अपह्नुति' अलङ्कार है ।

(क) पर्यस्तापह्नुति अलङ्कार

जहाँ धर्म मात्र का निषेध कर दिया जाता है वहाँ 'पर्यस्तापह्नुति' अलङ्कार होता है । जैसे—यह चन्द्रमा नहीं है, तो फिर चन्द्रमा कौन है ? प्रियतमा का मुख ही चन्द्रमा है । यहाँ 'पर्यस्तापह्नुति' अलंकार है ।

विमर्श—पर्यस्तापह्नुति अलङ्कार का लक्षण निम्न प्रकार है—

पर्यस्तापह्नुतिर्यत्र धर्ममात्रं निषिध्यते ।

(ख) भ्रान्तापह्नुतिः

भ्रान्तापह्नुतिरन्यस्य शङ्कया तथ्यनिर्णये ।
शरीरे तव सोत्कम्पं ज्वरः किं न सखि स्मरः ।।२१।।

अर्थात् जहाँ पर वस्तु के धर्म मात्र का निषेध करके साथ ही उस धर्म का आरोप अन्य वस्तु पर कर दिया जाय वहाँ 'पर्यस्तापह्नुति' अलङ्कार होता है । जैसे—

नायं सुधांशुः किं तर्हि ? सुधांशुः प्रेयसीमुखम् ।

अर्थात् कोई व्यक्ति चन्द्रमा को देखकर कहता है कि यह चन्द्रमा नहीं है, तो फिर चन्द्रमा कौन है ? चन्द्रमा तो प्रियतमा का मुख है" इस उदाहरण में वास्तविक चन्द्रमा सुधांशुत्व (चन्द्रत्व) धर्म का निषेध करके उसका आरोप प्रेयसी के मुख पर कर दिया है कि यह चन्द्रमा नहीं है चन्द्रमा तो प्रेयसी का मुख है । अतः 'पर्यस्तापह्नुति अलङ्कार है ।

(ख) भ्रान्तापह्नुति का लक्षण

"भ्रान्तापह्नुतिरन्यस्य शङ्कया तथ्यनिर्णये"

जहाँ पर एक वस्तु में दूसरे वस्तु की शङ्का उत्पन्न करके यदि वास्तविक तथ्य (सत्यता) का निर्णय (निश्चय) किया जाय तो वहाँ 'भ्रान्तापह्नुति' अलङ्कार होता है । भाव यह कि जहाँ किसी वस्तु में दूसरी वस्तु की शङ्का हो जाय और उस शङ्का को दूर करने के लिए भ्रान्ति का अपवारण (निषेध) करके वास्तविकता का निर्णय किया जाय वहाँ 'भ्रान्तापह्नुति' अलङ्कार होता है । जैसे—

शरीरे तव सोत्कम्पं ज्वरः किं ? न सखि ! स्मरः ।

अर्थात् कोई सखी नायिका में कम्पन देखकर कहती है कि 'हे सखि ! तुम्हारे शरीर में कम्पन हो रहा है अर्थात् तुम्हारा शरीर काँप रहा है, क्या ज्वर है ? इस पर वह कहती है कि नहीं, सखि ! यह काम ज्वर है अर्थात् काम ज्वर से कांप रही हूँ ।" इस उदाहरण में नायिका में कम्पन देखकर ज्वर होने कीं शंका होती है किन्तु यहाँ इस शंका का निवारण करके कामज्वर रूप वास्तविक वस्तु का निर्णय किया गया है । अब यह कि नायिका में कम्पन देखकर ज्वर की आशङ्का उत्पन्न होकर पुनः काम ज्वर के कारण यह कम्पन है इस वास्तविक तथ्य का निर्णय होता है अत यहाँ भ्रान्तापह्नुति अलङ्कार है ।

(ग) छेकापह्नुतिः

छेकापह्नुतिरन्यस्य शङ्कया तथ्यनिह्नवे ।
प्रजल्पन् मत्पदे लग्नः कान्तः किं नहि नूपुरः ॥२२॥

(घ) कैतवापह्नुतिः

कैतवापह्नुतिर्व्यक्तौ व्याजाद्यैर्निह्नवे पदैः ।
निर्यान्ति स्मरनाराचा कान्तादृग्पातकैतवात् ॥२३॥

(ग) छेकापह्नुति अलङ्कार का लक्षण

छेकापह्नुतिरन्यस्य शङ्कया तथ्यनिह्नवे ।

जहाँ अन्य वस्तु की शङ्का होने पर सत्यता को छिपाकर असत्य वस्तु की स्थापना की जाय वहाँ छेकापह्नुति' अलङ्कार होता है । जैसे—

प्रजल्पन् मत्पदे लग्नः कान्तः किं ? नहि, नूपुरः ।

"कोई नायिका अपनी सखी से कह रही है कि 'वह शब्द करता हुआ मेरे पैरों पर गिर पड़ा ? यह सुनकर दूसरी सखी कहती है कि "क्या तेरा प्रियतम ?" इस पर नायिका सत्य को छिपाने की दृष्टि से कहती है कि 'नहीं नूपुर अर्थात् पायजेव ।" यहाँ पर वस्तुतः नायिका के चरणों पर मीठा-मीठा शब्द करता हुआ उसका पति गिर पड़ा था; इस बात को वह अपनी सखी से कह रही थी, इतने में एक दूसरी सहेली पूछ बैठी कि क्या तेरा प्रियतम तेरे पैरों पर गिर पड़ा ? तब वह नायिका उससे सत्य बात को छिपाने के लिए कहती है कि नहीं नहीं, वह तो मेरा पायजेब गिरा था । यहाँ पर सत्य बात को छिपाकर असत्य की स्थापना की गई है अतः 'छेकापह्नुति' अलंकार है ।

(घ) कैतवापह्नुति अलङ्कार का लक्षण

कैतवापह्नुतिर्व्यक्तौ व्याजाद्यैर्निह्नवे पदैः ।

जहाँ छल, व्याज, कैतव आदि शब्दों (पदों) के द्वारा यथार्थ वस्तु का गोपन हो अर्थात् जहाँ पर व्याजादि शब्दों के द्वारा सत्य बात को छिपाया जाय वहाँ 'कैतवापह्नुति' अलङ्कार होता है । जैसे—

निर्यान्ति स्मरनाराचाः कान्तादृग्पातकैतवात् ।

अर्थात् कामिनी के कटाक्ष के ब्याज से कामदेव के बाण निकल रहे हैं

(ख) भ्रान्तापह्नुतिः

भ्रान्तापह्नुतिरन्यस्य शङ्कया तथ्यनिर्णये।
शरीरे तव सोत्कम्पं ज्वरः किं न सखि स्मरः ॥२१॥

अर्थात् जहाँ पर वस्तु के धर्म मात्र का निषेध करके साथ ही उस धर्म का आरोप अन्य वस्तु पर कर दिया जाय वहाँ 'पर्यस्तापह्नुति' अलङ्कार होता है। जैसे—

नायं सुधांशुः किं तर्हि ? सुधांशुः प्रेयसीमुखम्।

अर्थात् कोई व्यक्ति चन्द्रमा को देखकर कहता है कि यह चन्द्रमा नहीं है, तो फिर चन्द्रमा कौन है ? चन्द्रमा तो प्रियतमा का मुख है" इस उदाहरण में वास्तविक चन्द्रमा सुधांशुत्व (चन्द्रत्व) धर्म का निषेध करके उसका आरोप प्रेयसी के मुख पर कर दिया है कि यह चन्द्रमा नहीं है चन्द्रमा तो प्रेयसी का मुख है। अतः 'पर्यस्तापह्नुति अलङ्कार है।

(ख) भ्रान्तापह्नुति का लक्षण

"भ्रान्तापह्नुतिरन्यस्य शङ्कया तथ्यनिर्णये"

जहाँ पर एक वस्तु में दूसरे वस्तु की शङ्का उत्पन्न करके यदि वास्तविक तथ्य (सत्यता) का निर्णय (निश्चय) किया जाय तो वहाँ 'भ्रान्तापह्नुति' अलङ्कार होता है। भाव यह कि जहाँ किसी वस्तु में दूसरी वस्तु की शङ्का हो जाय और उस शङ्का को दूर करने के लिए भ्रान्ति का अपवारण (निषेध) करके वास्तविकता का निर्णय किया जाय वहाँ 'भ्रान्तापह्नुति' अलङ्कार होता है। जैसे—

शरीरे तव सोत्कम्पं ज्वरः किं ? न सखि ! स्मरः।

अर्थात् कोई सखी नायिका में कम्पन देखकर कहती है कि 'हे सखि ! तुम्हारे शरीर में कम्पन हो रहा है अर्थात् तुम्हारा शरीर काँप रहा है, क्या ज्वर है ? इस पर वह कहती है कि नहीं, सखि ! यह काम ज्वर है अर्थात् काम ज्वर से कांप रही हूँ।" इस उदाहरण में नायिका में कम्पन देखकर ज्वर होने कीं शंका होती है किन्तु यहाँ इस शंका का निवारण करके कामज्वर रूप वास्तविक वस्तु का निर्णय किया गया है। अब यह कि नायिका में कम्पन देखकर ज्वर की आशङ्का उत्पन्न होकर पुनः काम ज्वर के कारण यह कम्पन है इस वास्तविक तथ्य का निर्णय होता है अत यहाँ भ्रान्तापह्नुति अलङ्कार है।

(ग) छेकापह्नुतिः

छेकापह्नुतिरन्यस्य शङ्कया तथ्यनिह्नवे।
प्रजल्पन् मत्पदे लग्नः कान्तः किं नहि नूपुरः ॥२२॥

(घ) कैतवापह्नुतिः

कैतवापह्नुतिर्व्यक्तौ व्याजाद्यैर्निह्नवे पदैः।
निर्यान्ति स्मरनाराचा कान्ताद्दृक्पातकैतवात् ॥२३॥

(ग) छेकापह्नुति अलङ्कार का लक्षण

छेकापह्नुतिरन्यस्य शङ्कया तथ्यनिह्नवे।

जहाँ अन्य वस्तु की शङ्का होने पर सत्यता को छिपाकर असत्य वस्तु की स्थापना की जाय वहाँ छेकापह्नुति' अलङ्कार होता है। जैसे—

प्रजल्पन् मत्पदे लग्नः कान्तः किं ? नहि, नूपुरः।

"कोई नायिका अपनी सखी से कह रही है कि 'वह शब्द करता हुआ मेरे पैरों पर गिर पड़ा ? यह सुनकर दूसरी सखी कहती है कि "क्या तेरा प्रियतम ?" इस पर नायिका सत्य को छिपाने की दृष्टि से कहती है कि 'नहीं नूपुर अर्थात् पायजेब।" यहाँ पर वस्तुतः नायिका के चरणों पर मीठा-मीठा शब्द करता हुआ उसका पति गिर पड़ा था; इस बात को वह अपनी सखी से कह रही थी, इतने में एक दूसरी सहेली पूछ बैठी कि क्या तेरा प्रियतम तेरे पैरों पर गिर पड़ा ? तब वह नायिका उससे सत्य बात को छिपाने के लिए कहती है कि नहीं नहीं, वह तो मेरा पायजेब गिरा था। यहाँ पर सत्य बात को छिपाकर असत्य की स्थापना की गई है अतः 'छेकापह्नुति' अलंकार है।

(घ) कैतवापह्नुति अलङ्कार का लक्षण

कैतवापह्नुतिर्व्यक्तौ व्याजाद्यैर्निह्नवे पदैः।

जहाँ छल, व्याज, कैतव आदि शब्दों (पदों) के द्वारा यथार्थ वस्तु का गोपन हो अर्थात् जहाँ पर व्याजादि शब्दों के द्वारा सत्य बात को छिपाया जाय वहाँ 'कैतवापह्नुति' अलङ्कार होता है। जैसे—

निर्यान्ति स्मरनाराचाः कान्ताद्दृक्पातकैतवात्।

अर्थात् कामिनी के कटाक्ष के ब्याज से कामदेव के बाण निकल रहे हैं

११—उत्प्रेक्षा

उत्प्रेक्षोन्नीयते यत्र हेत्वादिर्निह्नुतिं विना।
त्वन्मुखश्रीकृते नूनं पद्मैर्वैरायते शशी ॥२४॥

अर्थात् प्रिया के कटाक्ष के बहाने कामदेव वाण वरसा रहा है। यहाँ पर 'कैतव' पद के प्रयाग के द्वारा कान्ता (प्रिया) के कटाक्षों का गोपन किया गया है। भाव यह कि वस्तुतः प्रिया के कटाक्ष चल रहे हैं किन्तु इस वात को छिपाने के लिए कहा गया है कि ये कान्ता के कटाक्ष नहीं है वल्कि कामदेव के वाण हैं। यहाँ सत्य वात 'कान्ता के कटाक्ष' को कैतव पद के प्रयोग के द्वारा छिपाया गया है। अतः यहाँ 'कैतवापह्नुति' अलङ्कार है।

अपह्नुति और रूपक—

दोनों साहश्यमूलक अलङ्कार है और दोनों में प्रस्तुत पर अप्रस्तुत (विषय पर विषयी) का आरोप होता है किन्तु अपह्नुति में प्रकृत (प्रस्तुत) का निषेध किया जाता है और रूपक में प्रकृत का निषेध नहीं होता है।

११—उत्प्रेक्षा अलङ्कार

११—चन्द्रालोककार जयदेव ने उत्प्रेक्षा अलङ्कार का लक्षण निम्न प्रकार किया है—

उत्प्रेक्षोन्नीयते यत्र हेत्वादिर्निह्नुतिं विना

जहाँ पर निषेध के विना ही हेतु (कारण) फल और वस्तु आदि की सम्भावना की जाती है वहाँ उत्प्रेक्षा' अलङ्कार होता है। अर्थात् विना किसी छिपाव के ही जहाँ पर उपमान के साथ उपमेय की (अर्थात् उपमेय में उपमान की) सम्भावना की जाती है वहाँ 'उत्प्रेक्षा' अलङ्कार होता है, यह सम्भावना वस्तु, फल और हेतु (कारण) रूप में की जाती है। उदाहरण जैसे—

"त्वन्मुखश्रीकृते नूनं पद्मैर्वैरायते शशी।"

"हे सुन्दरि ! तुम्हारे मुख की शोभा प्राप्त करने के लिए चन्द्रमा कमल से शत्रुता रखता है।" यहाँ पर हेतु की सम्भावना की गई है। चन्द्रमा के उदय होने पर कमल वन्द हो जाते हैं इस तथ्य 'चन्द्रमा कमलों से वैर करता है, यह सम्भावना की गई है और इस वैर का कारण 'मुख की शोभा की प्राप्ति, वताया गया है। अतः यहाँ पर 'उत्प्रेक्षा' अलङ्कार है।

गूढ़ोत्प्रेक्षा

इवादिकपदाभावे गूढ़ोत्प्रेक्षां प्रचक्षते ।
त्वत्कीर्त्तिविभ्रमश्रान्ता विवेश स्वर्गनिम्नगाम् ॥२५॥

चूँकि उपमान के साथ उपमेय की सम्भावना वस्तु, फल (क्रिया) और हेतु (कारण) के रूप में की जाती है अतः उत्प्रेक्षा अलङ्कार तीन प्रकार का होता है—(१) वस्तूत्प्रेक्षा (२) फलोत्प्रेक्षा और (३) हेतूत्प्रेक्षा ।

(१) **वस्तूत्प्रेक्षा**—जहाँ पर किसी एक वस्तु (उपमेय) की किसी दूसरी उपमान (उपमान) के साथ सम्भावना होती है, उसे 'वस्तूत्प्रेक्षा' कहते हैं । इसी को 'स्वरूपोत्प्रेक्षा' भी कहते हैं । जैसे, उक्त उदाहरण में 'चन्द्रोदय होने पर कमल स्वतः बन्द हो जाता है, किन्तु यहाँ पर उससे चन्द्रमा और कमल का वैर प्रतिपादित है । अतः यहाँ पर 'वस्तूत्प्रेक्षा' है ।

(२) **फलोत्प्रेक्षा**—जहाँ पर किसी वस्तु के कार्य (फल) न होने पर भी उसके फल की सम्भावना की जाती है उसे 'फलोत्प्रेक्षा' कहते है । जैसे उक्त उदाहरण में 'शोभा-प्राप्ति' चन्द्रमा के वैर का फल न होते हुए भी उसकी फल के रूप में सम्भावना की गई है अतः 'फलोत्प्रेक्षा' है ।

(३) **हेतूत्प्रेक्षा**—जहाँ पर किसी वस्तु के कार्य के हेतु न होने पर भी उसके हेतु की सम्भावना कीं जाती है वहाँ 'हेतूत्प्रेक्षा' होती है जैसे उक्त, उदाहरण में चन्द्रमा और कमल का एक स्वाभाविक होने पर भी 'शोभा-प्राप्ति' के कारण की सम्भावना की गई है अतः वहाँ 'हेतूत्प्रेक्षा' है ।

उत्प्रेक्षावाचक शब्द—

"मन्ये - शङ्के-ध्रुवं-प्रायो - नूनमित्येवादिभिः ।
उत्प्रेक्षा व्यज्यते शब्दैरिव शब्दोऽपि तादृशः ॥

अर्थात् मन्ये, शङ्के, ध्रुवम्, प्रायः नूनम्, इव, यथा आदि उत्प्रेक्षा के व्यञ्जक (वाचक) शब्द कहे गये हैं ।

गूढ़ोत्प्रेक्षा का लक्षण

"जहाँ पर इव, मन्ये, शङ्के आदि उत्प्रेक्षा-वाचक शब्दों का प्रयोग नहीं होता, उसे 'गूढ़ोत्प्रेक्षा' कहते हैं । इसी को 'गम्योत्प्रेक्षा' भी कहते हैं । जैसे—

"त्वत्कीर्त्तिभ्रमणश्रान्ता विवेश स्वर्गनिम्नगाम् ।"

१२–१४—स्मृति-भ्रान्ति-सन्देहालङ्काराः

स्यात्स्मृति-भ्रान्ति-सन्देहैस्तदलङ्कृतित्रयम् ।
पङ्कजं पश्यतः कान्तामुखं मे गाहते मनः ।।२६।।

अर्थात् हे राजन् ! तुम्हारी कीर्ति समस्त लोकों में विचरण करने से थक कर आकाशगङ्गा में (स्नानार्थ) प्रविष्ट हो गई। अर्थात् आपकी कीर्त्ति स्वर्ग तक पहुँच गई। यहाँ पर उत्प्रेक्षावाचक इव, यथा आदि शब्दों के न होने से 'गूढ़ोत्प्रेक्षा' अलङ्कार है।

यहाँ पर आकाशगङ्गा में कीर्त्ति के प्रवेश की सम्भावना होने से 'वस्तूत्प्रेक्षा' है। आकाशगङ्गा में प्रवेश का फल थकावट न होने पर भी उसकी फल के रूप में सम्भावना की गई है। अतः 'फलोत्प्रेक्षा' है। 'आकाश-गङ्गा' में प्रवेश का कारण थकावट बताया गया है, अतः 'हेतूत्प्रेक्षा' है।

उपमा और उत्प्रेक्षा—

दोनों सादृश्यमूलक अलङ्कार है। किन्तु उपमा भेदाभेद प्रधान अलङ्कार है और उत्प्रेक्षा अभेद प्रधान अथवा अध्यवसायमूलक अलङ्कार है। उपमा में उपमेय की उपमान के साथ तुलना की जाती है और उत्प्रेक्षा में उपमेय में उपमान की सम्भावना की जाती है। जैसे 'मुख चन्द्रमा के समान है 'यह उपमा है और 'मुख मानो चन्द्रमा है' यह उत्प्रेक्षा है।

रूपक और उत्प्रेक्षा—

दोनों साधर्म्यमूलक अलङ्कार हैं किन्तु रूपक में उपमेय पर उपमान का आरोप किया जाता है और उत्प्रेक्षा में उपमेय में उपमान की सम्भावना की जाती है। जैसे 'मुखचन्द्रः' अर्थात् मुख रूपी चन्द्रमा, यह रूपक है और 'मुख मानो चन्द्रमा है' यह उत्प्रेक्षा है। उत्प्रेक्षा में संशय (सन्देह) बना रहता है। और रूपक में निश्चितता रहती है।

१२–१४—स्मृति, भ्रान्ति और सन्देह अलङ्कार

'जहाँ पर स्मरण, भ्रान्ति और सन्देह हो वहाँ क्रमशः स्मृति, भ्रान्ति और अलङ्कार होते हैं। जैसे—

(१) 'कमल को देखते हुए मेरा मन प्रिया का मुख याद करने लगता है' यहाँ पर 'स्मृति' अलङ्कार है।

अयं प्रमत्तमधुपः त्वन्मुखं वेत्ति पङ्कजम् ।
पङ्कजं वा सुधांशुर्वेत्यस्माकं तु न निर्णयः ॥२७॥

---

(२) 'यह मदमस्त भौंरा तुम्हारे मुख को कमल समझ रहा है' यहाँ पर 'भ्रान्ति' अलङ्कार है ।

(३) 'यह (प्रियामुख) कमल है या चन्द्रमा ? हम निश्चय नहीं कर पा रहे हैं । यहाँ पर 'सन्देह' अलङ्कार है ।

विमर्श—चन्द्रालोककार जयदेव ने उपर्युक्त तीनों अलङ्कारों का कोई लक्षण नहीं किया है केवल नाम से तथा उदाहरण से उनके लक्षण किये जा रहे हैं—

१२—स्मृति या स्मृतिमान् अलङ्कार

१२—जहाँ पर किसी वस्तु को देखकर तत्सदृश पूर्वपरिचित वस्तु का स्मरण हो जाता है वहाँ स्मृति या स्मृतिमान् अलङ्कार होता है । जैसे—

"पङ्कजं पश्यतः कान्तामुखं मे गाहते मनः ।"

'कमल को देखते हुए मेरा मन प्रियतमा का मुख स्मरण करने लगता है ।' अर्थात् कमल को देखकर मुझे अपनी प्रियतमा का मुख याद आ जाता है । यहाँ घर प्रियतमा के मुख के समान कमल को देखकर प्रिया के मुख का स्मरण होने से 'स्मृतिमान्' (स्मृति) अलङ्कार है । इसी को 'स्मरण' अलङ्कार भी कहते हैं ।

१३—भ्रान्ति या भ्रान्तिमान् अलंकार

१३—जहाँ पर किसी वस्तु को देखकर तत्सदृश किसी अन्य वस्तु की भ्रान्ति होती है वहाँ 'भ्रान्ति' या 'भ्रान्तिमान्' अलङ्कार होता है । अर्थात् जहाँ पर किसी वस्तु में मिथ्याज्ञान (भ्रान्ति) होता है उसे 'भ्रान्ति' कहते हैं । जैसे शुक्ति में रजत का भान होना, तथा रज्जु में सर्प का भान होना 'भ्रान्तिमान्' अलङ्कार है । उदाहरण जैसे—

"अयं प्रमत्तमधुपस्त्वन्मुखं वेत्ति पङ्कजम् ।"

"यह मदमस्त (मतवाला) भौंरा तुम्हारे मुख को कमल समझ रहा है ।" वहाँ पर मुख और कमल में सादृश्य के कारण भौंरा प्रिया के मुख को कमल समझ रहा है, अतः यहाँ 'भ्रान्तिमान्' अलङ्कार है ।

भ्रान्तिमान् का अन्य उदाहरण—

"पलाशमुकुलभ्रान्त्या शुकतुण्डे पतत्यलिः ।"
सोऽपि जम्बूफलभ्रान्त्या तमलिं धर्त्तुमिच्छति ॥

'अर्थात् कोई भौंरा तोते के चोंच को पलाश की कली समझकर उस पर टूट रहा है और वह तोता भी उस भौंरे को जामुन का फल समझकर उसे पकड़ना चाहता है ।"

यहाँ पर भौंरा तो भ्रान्ति से तोते की चोंच को फलाश की कली समझ रहा है और तोता भी भ्रान्ति से भौंरे को कली को जामुन समझ रहा है अतः यहाँ पर भ्रान्ति अथवा भ्रान्तिमान् अलङ्कार है ।

(१४) सन्देह अलङ्कार

१४—'जहाँ पर किसी वस्तु को देखकर तत्सदृश अन्य वस्तु का सन्देह हो किन्तु निर्णय न हो सके, 'वहाँ 'सन्देह अलङ्कार' होता है । जैसे सीपी को देखकर 'यह सीपी है या चांदी' इस प्रकार सन्देह होने पर तथा किसी निश्चय पर न पहुँच सकने से 'सन्देह' अलङ्कार होता है। सन्देह अलङ्कार का उदाहरण जयदेव ने निम्न प्रकार दिया है—

'पङ्कजं वा सुधांशुर्वेत्यस्माकं तु न निर्णयः ।"

अर्थात् प्रियतमा का मुख को देखकर यह कमल है या चन्द्रमा ? हम निश्चय नहीं कर पा रहे हैं । यहाँ पर प्रियतमा के मुख में कमल तथा चन्द्रमा का सन्देह हो रहा है अतः यहाँ 'सन्देह' अलङ्कार है ।

सन्देह तथा भ्रान्तिमान्—

दोनों ही अभेदप्रधान सादृश्यमूलक अलङ्कार हैं किन्तु सन्देह अलङ्कार में प्रस्तुत (उपमेय) में अप्रस्तुत (अप्रकृत, उपमान) का संशय होता है । और भ्रान्तिमान् अलङ्कार में प्रस्तुत वस्तु में अप्रस्तुत का मिथ्याज्ञान (भ्रम या भ्रमात्मक ज्ञान) होता है । जैसे—'पङ्कजं वा सुधांशुर्वा' (प्रियतमा का मुख कमल है या चन्द्रमा ? इस प्रकार का संशय होने से यह सन्देहालङ्कार है और 'यह भौंरा तुम्हारे मुख को कमल समझ रहा है' यहाँ मुख में कमल की भ्रान्ति होने भ्रान्तिमान् अलङ्कार है ।

उत्प्रेक्षा और सन्देह—

दोनों ही संशयमूलक अलङ्कार हैं और दोनों में ही अनिश्चितता रहती है,

(१५) काव्यलिङ्गालङ्कारः

स्यात् काव्यलिङ्गं वागर्थो नूतनार्थसमर्पकः।
जितोऽसि मन्दकन्दर्प ? मच्चित्तेऽस्ति त्रिलोचनः ।।२८।।

किन्तु सन्देह में दोनों पक्ष समान होते हैं अतः किसी एक पक्ष में मोह नहीं होता जैसे 'पङ्कजं वा सुधांशुर्वा' (प्रियतमा का मुख कमल है या चन्द्रमा) यह सन्देह है जबकि उत्प्रेक्षा में उपमान पक्ष की ओर विशेप झुकाव होता है जैसे 'मुख मानो चन्द्रमा है' यहाँ चन्द्र के प्रति विशेष झुकाव होने से उत्प्रेक्षा है।

भ्रान्तिमान् और उत्प्रेक्षा—

दोनों ही संशयमूलक अलङ्कार है किन्तु भ्रान्तिमान् में मिथ्याज्ञान निश्चित होता है जबकि उत्प्रेक्षा में सम्भावना (अनिश्चयात्मक ज्ञान) होती है। जैसे 'भौंरा तुम्हारे मुख को कमल समझ रहा है यहाँ मुख को कमल समझना यह मिथ्याज्ञान निश्चित है अतः यह भ्रान्तिमान् है और 'मुख मानो चन्द्रमा है' यहाँ पर मुख में चन्द्रमा की सम्भावना की जा रही है अतः 'उत्प्रेक्षा' अलङ्कार है।

रूपक और भ्रान्ति—

दोनों अभेद प्रधान अलङ्कार है किन्तु रूपक में प्रस्तुत और अप्रस्तुत (विषय-विषयी) दोनों का ज्ञान रहता है जबकि भ्रान्ति में केवल अप्रस्तुत उपमान का ज्ञान रहता है।

(१५) काव्यलिङ्ग अलङ्कार

१५. नवीन अर्थ का बोधक पदार्थ या वाक्यार्थ 'काव्यलिङ्ग' कहलाता है। जैसे—हे मन्द कामदेव ! तुम जीत लिये गये हो, क्योंकि मेरे चित्त में त्रिलोचन शिव विराजमान हैं। यहाँ पर काव्यलिङ्ग अलङ्कार है।

विमर्श—जयदेव ने काव्यलिङ्ग का लक्षण निम्नप्रकार लिखा है—

'स्यात् काव्यलिङ्गं वागर्थो नूतनार्थसमन्वितः।'

अर्थात् जहाँ पर किसी पदार्थ या वाक्यार्थ के द्वारा किसी नवीन अर्थ का बोध होता है वहाँ 'काव्यलिङ्ग' अलङ्कार होता है। इस प्रकार नहाँ नव्य (नये)अर्थ का बोधक पदार्थ या वाक्यार्थ हो, वहाँ 'काव्यलिङ्ग' अलङ्कार होता है। जैसे—

"जितोऽसि मन्दकन्दर्प मच्चित्तेऽस्ति त्रिलोचनः।"

(१६) परिक़रालङ्कारः

अलङ्कारः परिकरः साभिप्राये विशेषणे ।
सुधांशुकलितोत्तंसस्तापं हरतु वः शिवः ॥२६॥

हे मूढ़ कामदेव ! तुम मेरे द्वारा जीत लिये गये हो, क्योंकि मेरे चित्त में तीन नेत्र वाले भगवान् शिव विराजमान हैं ।

भाव यह कि कामदेव को जीतना कठिन है, उसे केवल शङ्कर भगवान् ही जीत सकते हैं, किन्तु यहाँ 'मेरे चित्त में त्रिलोचन शिव हैं' इस वाक्य के द्वारा 'मैंने तुझे जीत लिया' इस कथन का समर्थन होता है। अतः यहाँ 'काव्यलिङ्ग' अलङ्कार है ।

तात्पर्य यह कि हे कामदेव ! मेरे चित्त त्रिनेत्रधारी शिव हैं । उनके तृतीय नेत्र से तुम भस्म हो जावोगे, अतः तुम मेरे द्वारा जीते गये हो, इस नवीन अर्थ का बोध 'त्रिलोचन' पद के द्वारा होता है अतः यहाँ 'काव्यलिङ्ग' अलङ्कार है ।

काव्यलिङ्ग और अर्थान्तरन्यास—

दोनों में एक वाक्यार्थ के द्वारा दूसरे वाक्यार्थ का समर्थन पाया जाता है किन्तु काव्यलिङ्ग में दोनों वाक्यों में कार्य-कारण-भाव से सम्बन्ध होता है जबकि अर्थान्तरन्यास में सामान्य-विशेषभाव होता है। काव्यलिङ्ग में दोनों वाक्य प्रस्तुत (प्रकृत) परक होते हैं और अर्थान्तरन्यास में एक वाक्य प्रस्तुत परक और दूसरा अप्रस्तुत परक होता है ।

(१६) परिकर अलङ्कार

(१६) विशेषणों के अभिप्राय-युक्त होने पर 'परिकर' अलङ्कार होता । जैसे चन्द्रमा को शिरोभूषण बनाने वाले चन्द्रशेखर शिव आपके सन्ताप को दूर करें। यहाँ पर परिकर अलङ्कार है ।

विमर्श--जयदेव ने परिकर अलङ्कार का लक्षण निम्न प्रकार किया है ।

"अलङ्कारः परिकरः साभिप्राये विशेषणे"

'जहाँ पर किसी विशेष अभिप्राय से विशेषण का प्रयोग किया जाता है उसे 'परिकर' अलङ्कार कहते हैं । तात्पर्य यह कि यदि विशेपणों को किसी विशेष उद्देश्य से प्रयोग किया जाता है तो 'परिकर' अलङ्कार होता है । जैसे—

"सुधांशुकलितोत्तंसस्तापं हरतु वः शिवः"

'चन्द्रमा को शिरोभूषण के रूप में धारण करने वाले अर्थात् चन्द्रशेखर

(१७) अतिशयोक्त्यलङ्कारः

(क) अक्रमातिशयोक्तिः

अक्रमातिशयोक्तिश्चेद् युगपत्कार्यकारणे।
आलिङ्गन्ति समं देव ज्यां शराश्च पराश्च ते ॥३०॥

शिव आपके सन्ताप को दूर करें। यहाँ पर "सुधांशुकलितोत्तंसः" यह शिव का विशेषण है। यह विशेषण साभिप्राय है, शिव के इस विशेषण का अभिप्राय यह है कि शिव में ताप-नाशक शक्ति है क्योंकि शिव के मस्तक पर सुधांशु (चन्द्रमा) है और चन्द्रमा की किरणें अमृतमय होने से ताप नाशक हैं, अतः यहाँ पर 'परिकर अलङ्कार' है।

(१७) अतिशयोक्ति अलङ्कार

विमर्श—चन्द्रालोककार जयदेव ने 'अतिशयोक्ति' अलङ्कार का अलग से कोई सामान्य लक्षण नहीं किया है। अन्य आचार्यों ने अतिशयोक्ति का लक्षण यह दिया है कि जहाँ पर उपमान उपमेय का निगरण कर लेता है वहाँ अतिशयोक्ति अलङ्कार होता है। जैसे कोई व्यक्ति किसी नायिका के मुख को देखकर कहता है कि 'चन्द्रं पश्य' अर्थात् चाँद को देखो। यहाँ पर उपमान चन्द्र के द्वारा उपमेय मुख का निगरण कर लेने से 'अतिशयोक्ति' अलङ्कार है। जयदेव ने अतिशयोक्ति का सामान्य लक्षण न करके उनके भेदों का सोदाहरण निरूपण किया है। जयदेव के अनुसार 'अतिशयोक्ति' के छः भेद होते हैं—(१) अक्रमातिशयोक्ति, (२) अत्यन्तातिशयोक्ति (३) चपलातिशयोक्ति (४) सम्बन्धातिशयोक्ति (५) भेदकातिशयोक्ति (६) रूपकातिशयोक्ति। यहाँ क्रमशः उनका उदाहरण और लक्षण प्रस्तुत कर रहे हैं—

(क) अक्रमातिशयोक्ति अलङ्कार

"जहाँ पर कार्य और कारण एक साथ हों, वहाँ 'अक्रमातिशयोक्ति' होती है। जैसे—'हे राजन्! तुम्हारे वाण और शत्रु एक साथ ही ज्या (प्रत्यञ्चा, पृथ्वी) का आलिङ्गन करते हैं यहाँ पर 'अक्रमातिशयोक्ति' है।

जयदेव ने अक्रमातिशयोक्ति का लक्षण निम्न प्रकार किया है—

'अक्रमातिशयोक्तिश्चेद् युगपत्कार्यकारणे।'

अर्थात् जहाँ पर कार्य और कारण की एक साथ स्थिति होती हैं वहाँ 'अक्रमातिशयोक्ति' अलङ्कार होता है। भाव यह कि कारण कार्य के पहिले

(ख) अत्यन्तातिशयोक्तिः

अत्यन्ततिशयोक्तिस्तत्पौर्वापर्यव्यतिक्रमे ।
अग्रे मानो गत : पश्चादनुनीता प्रियेण सा ॥३१॥

होता है और कार्य कारण के पश्चात् होता है किन्तु जहाँ पर दोनों साथ-साथ हों वहाँ क्रम का उल्लंघन करने के कारण 'अक्रमातिशयोक्ति' होती है ।

'अक्रमातिशयोक्ति' में 'अक्रम' पद के यही तात्पर्य है कि जहाँ पर कार्य-कारण में क्रम न हों, वहाँ 'अक्रमातिशयोक्ति' होती है ।

उदाहरण जैसे—

"आलिङ्गन्ति समं देव ? ज्यां शराश्च पराश्च ते ।"

अर्थात् 'हे देव ! आपके वाण और आपके शत्रु एक साथ ही पृथ्वी का आलिङ्गन कर रहे हैं ।' यहाँ पर 'बाण का धनुष की डोरी (प्रत्यञ्चा) का छूना कारण है और 'शत्रुओं का पृथ्वी पर गिरना' कार्य है । अर्थात् पहले धनुष की डोरी पर बाण का स्पर्श होना चाहिए और बाद में शत्रुओं का गिरना । तात्पर्य यह कि जव वाण को शत्रु पर प्रहार होगा तभी शत्रु का पतन होगा, किन्तु यहाँ पर दोनों (कार्य और कारण) का एक साथ वर्णन है अतः यहाँ 'अक्रमातिशयोक्ति' अलङ्कार है ।

अक्रमातिशयोक्ति का एक अन्य उदाहरण है—

सममेव समाक्रान्तं द्वयं द्विरदगामिना ।
तेन सिंहासनं पित्र्यमखिलं चारिमण्डलम् ॥

अर्थात् गज से गमन करने वाले महाराज रघु ने पिता के राजसिंहासन तथा समस्त राजमण्डल पर एक साथ ही अधिकार कर लिया ।'

(ख) अत्यन्तातिशयोक्ति अलङ्कार

"जहाँ पर कारण और कार्य पूर्वापर क्रम में व्यतिक्रम कर दिया जाय वहाँ 'अत्यन्तातिशयोक्ति' होती है । जैसे – नायिका का मान तो पहले ही चला गया और बाद में नायक ने उसे मनाया । यहाँ पर 'अत्यन्ताशियोक्ति' है ।

विमर्श —जयदेव ने 'अत्यन्तातिशयोक्ति का लक्षण निम्न प्रकार किया है—

"अत्यन्तातिशयोक्तिस्तत्पौर्वापर्यव्यतिक्रमे ।"

अर्थात् अत्यन्तातिशयोक्ति अलङ्कार वहाँ होता है जहाँ पर कार्य और

(ग) चपलातिशयोक्तिः

चपलातिशयोक्तिस्तु कार्ये हेतुप्रसक्तिजे ।
यामीति प्रियपृष्टाया वलयोऽभवदूर्मिका ॥३२॥

कारण के पूर्वापर क्रम में व्यतिक्रम (उलटा) होता है । भाव यह कि नियमतः कार्य के पहले कारण होता है और उसके बाद कार्य होता है किन्तु जहाँ पर उक्त नियम के विपरीत अर्थात् पहले कार्य हो और कारण को कार्य के बाद दिखाया जाय, वहाँ 'अत्यन्तातिशयोक्ति' अलङ्कार होता है । जैसे—

'अग्रे मानो गतः पश्चादनुनीता प्रियेण सा ।'

'अर्थात् 'पहले तो मान चला गया, बाद में प्रियतम ने उसे मनाया' यहाँ पर 'मान का चला जाना' कार्य है और 'प्रिय के द्वारा मनाया जाना' कारण । अतः यहाँ 'मानापगमन' कार्य के पहले 'मनाना' कारण होना चाहिए, किन्तु नायिका का मान कारण मनाने के पहिले ही चला गया । अतः यहाँ 'अत्यन्तातिशयोक्ति' अलङ्कार है ।

(ग) चपलातिशयोक्ति अलङ्कार

"जहाँ पर कारण के प्रसङ्ग अर्थात् कथनमात्र से ही कार्य की उत्पत्ति हो" वहाँ 'चपलातिशयोक्ति' होती है । जैसे, प्रिय के 'मैं जाऊँ' यह पूछे जाने पर ही नायिका की अंगूठी कंगन बन गई ।

विमर्श—जयदेव से चपलातिशयोक्ति' का लक्षण निम्न प्रकार किया है—

"चपलातिशयोक्तिस्तु कार्ये हेतुप्रसक्तिजे ।"

अर्थात् जहाँ पर कारण के कथन मात्र से ही कार्य की उत्पत्ति हो जाय, वहाँ 'चपलातिशयोक्ति' होती है । भाव यह कि कारण से ही कार्य की उत्पत्ति होती है, किन्तु जहाँ पर कारण के केवल कथन मात्र से ही कार्य की उत्पत्ति हो जाय अर्थात् कारण के प्रसङ्ग मात्र से ही कार्य उत्पन्न हो वहाँ 'चपलातिशयोक्ति' अलङ्कार होता है । जैसे—

"यामीति प्रियपृष्टाया वलयोऽभवदूर्मिका ।"

अर्थात् परदेश जाने के लिए तैयार प्रियतम के 'मैं जाता हूँ' ऐसा कहे जाने पर ही नायिका की अंगूठी कंगन बन गई । तात्पर्य यह कि नायक अभी गया नहीं है, केवल जाने के लिए पूछ ही रहा था कि यह सुनते ही नायिका इतनी

(घ) सम्बन्धातिशयोक्तिः

सम्बन्धातिशयोक्तिः स्यात्तदभावेऽपि तद्वचः ।
पश्य सौधाग्रसंसक्तं विभाति विधुमण्डलम् ।।३३।।

दुबली हो गई कि उसकी अंगूठी ढीली होकर कंगन के समान बड़ी हो गई। यहाँ पर नायिका के दुर्बलता रूप कार्य का कारण नायक का परदेश-गमन है। यहाँ केवल परदेश की बात कही गई है कि नायिका दुबली हो गई। अतः 'चपलातिशयोक्ति' है।

चपलातिशयोक्ति का एक अन्य उदाहरण देखिये—

"यामि, न यामीति धवे वदति पुरस्तात्क्षणेन तन्वङ्ग्याः।
गलितानि पुरो वलयान्यपराणि तथैव दलितानि ।।

अर्थात् पति के 'मैं जाता हूँ' ऐसा कहने पर नायिका इतनी दुबली हो गई कि उसके हाथ के कंगन (चूड़ियाँ) खिसक कर गिर गई और दूसरी ओर 'मैं नहीं जाता हूँ' प्रिया के इस प्रकार कहने पर नायिका प्रसन्नता से इतनी फूल उठी कि मोटाई के कारण उसके हाथ की चूड़ियाँ चटक गई।

(घ) सम्बन्धातिशयोक्ति अलङ्कार

'जहाँ पर असम्बन्ध में सम्बन्ध का कथन किया जाता है वहाँ सम्बन्धातिशयोक्ति अलङ्कार होता है। जैसे, महल के अग्रभाग के संसर्ग से युक्त चन्द्रमण्डल शोभित हो रहा है।

विमर्श—जयदेव ने 'सम्बन्धातिशयोक्ति' का लक्षण निम्न प्रकार किया है—

'सम्बन्धातिशयोक्तिः स्यात्तदभावेऽपि तद्वचः"

अर्थात् जहाँ पर सम्बन्ध न रहने पर भी सम्बन्ध का कथन किया जाय, वहाँ 'सम्बन्धातिशयोक्ति' अलङ्कार होता है। तात्पर्य यह कि जहाँ पर सम्बन्ध नहीं होता वहाँ सम्बन्ध बताना अनुचित है किन्तु चमत्कार के लिए काव्य में यदि इस प्रकार का वर्णन पाया जाय तो वहाँ 'सम्बन्धातिशयोक्ति' अलङ्कार होगा। जैसे—

"पश्य, सौधाग्रसंसक्तं विभाति विधुमण्डलम्"

'देखिये, महल के अग्रभाग में लगा हुआ चन्द्रमण्डल शोभित हो रहा है।" यहाँ पर अटारी से चन्द्रमा का सम्बन्ध न होने पर भी सम्बन्ध बताया गया है अर्थात् चन्द्रमा का अटारी से कोई सम्बन्ध नहीं है किन्तु अटारी की उच्चता

(ङ) भेदकातिशयोक्तिः
भेदकातिशयोक्तिश्चेदेकस्यैवान्यतोच्यते ।
अहो अन्यैव लावण्यलीला बालाकुचस्थले ।।३४।।

बताने के लिए दोनों में सम्बन्ध बताया गया है अतः 'सम्बन्धातिशयोक्ति' अलङ्कार है।

विशेष—कुवलयानन्द में इसी प्रकार सम्बन्ध में असम्बन्ध का कथन रूप 'असम्बन्धातिशयोक्ति' अलङ्कार माना जाता है।

असम्बन्धातिशयोक्ति का उदाहरण कुवलयानन्द में यह दिया गया है—

"त्वयि दातरि राजेन्द्र ! स्वर्गद्रुमान्नाद्रियामहे ।"

अर्थात् 'हे राजन् तुम्हारे समान दानी होने से हम स्वर्गवृक्ष कल्पवृक्ष का आदर नहीं करते।' यहाँ पर 'असम्बन्धातिशयोक्ति' है।

(ङ) भेदकातिशयोक्ति अलङ्कार

"जहाँ पर एक ही वस्तु (पदार्थ) का अन्य रूप में वर्णन किया जाता है, वहाँ 'भेदकातिशयोक्ति' होती है। जैसे, युवती बाला के कुचमण्डल की शोभा कुछ और ही प्रकार की है, यहाँ 'भेदकातिशयोक्ति' है।

विमर्श—जयदेव ने भेदकातिशयोक्ति का लक्षण किया है—

'भेदकातिशयोक्तिश्चेदेकस्यैवान्यतोच्यते ।"

अर्थात् जहाँ पर किसी वस्तु के भिन्न न होते हुए भी उसे भिन्न रूप में वर्णन किया जाता है वहाँ 'भेदकातिशयोक्ति' अलङ्कार होता है। जैसे—

"अहो अन्यैव लावण्यलीला बालकुचस्थले ।"

"अहो ? इस युवती बाला के कुचमण्डल की शोभा तो कुछ और ही प्रकार की है।' भाव यह कि इस बाला के कुचमण्डल की शोभा विलक्षण एवं अलौकिक है। यहाँ पर कुचमण्डल की शोभा प्रसिद्ध सौन्दर्य शोभा से भिन्न नहीं है, भिन्न न होने पर भी उसकी लोकोत्तर भिन्नता का वर्णन करना 'भेदकातिशयोक्ति' अलङ्कार हैं।

भेदकातिशयोक्ति का एक अन्य उदाहरण—

'अन्यदेवाङ्गलावण्यमन्याः सौरभसम्पदः ।
तस्याः पद्मपलशाक्ष्याः सरसत्वमलौकिकम् ।"

(च) रूपकातिशयोक्तिः

रूपकातिशयोक्तिश्चेद् रूप्यं रूपकमध्यगम् ।
पश्य नीलोत्पलद्वन्द्वान्निःसरन्ति शिताः शराः ॥३५॥

"इस कमलनयिनी नायिका के अङ्ग का लावण्य कुछ और प्रकार का है और मुख-सौरभ कुछ और है तथा उसकी सरसता कुछ और है।"

यहाँ पर रमणी के लावण्य आदि अन्य रमणियों के लावण्यादि से भिन्न न होते हुए भी भिन्नता का कथन किया गया है अतः 'भेदकातिशयोक्ति' है।

(च) रूपकातिशयोक्ति अलङ्कार

"जहाँ पर रूप्य (उपमेय) रूपक (उपमान) के मध्य में हो वहाँ पर 'रूपकातिशयोक्ति' अलङ्कार होता है। जैसे, देखो, नील कमल के जोड़े से तीक्ष्ण बाण निकल रहे हैं।"

विमर्श—जयदेव ने रूपकातिशयोक्ति का लक्षण इस प्रकार किया है—

"रूपकातिशयोक्तिश्चेद् रूप्यं रूपकमध्यगम् ।"

'जहाँ पर उपमेय का उपमान के मध्य निगरण (अन्तर्भाव) हो जाता है वहाँ 'रूपकातिशयोक्ति' अलङ्कार होता है। भाव यह कि जहाँ पर उपमान उपमेय का निगरण कर लेता है और उपमान स्वयं उपमेय का काम करता है वहाँ 'रूपकातिशयोक्ति नामक अलङ्कार होता है। जैसे—

'पश्य नीलोत्पलद्वन्द्वान्निःसरन्ति शिताः शराः ।"

'देखो, नीलकमल को जोड़े से तीक्ष्ण बाण निकल रहे है नायिका के नेत्र और कटाक्ष उपमेय है और नीलकमल तथा वाण उपमान हैं। यहाँ पर नील कमल (उपमान) के द्वारा नायिका के नेत्र (उपमेय) का निगरण कर लिया गया है। इसी प्रकार बाण (उपमान) के द्वारा कटाक्ष (उपमेय) का निगरण कर लिय। गया है। अतः यहाँ 'रूपकातिशयोक्ति' अलङ्कार है।

रूपक और अतिशयोक्ति—

दोनों ही साधर्म्यमूलक अभेद प्रधान अलङ्कार हैं। किन्तु रूपक में उपमान तथा उपमेय में तादात्म्य पाया जाता है जबकि अतिशयोक्ति में अध्यवसाय के द्वारा अभेद कल्पना होती है रूपक में अभेदारोप अर्थात् उपमेय पर उपमान का अभेदारोप अर्थात् उपमेय पर उपमान का अभेद आरोप होता है जबकि अतिशयोक्ति में उपमान के द्वारा उपमेय का निगरण होता है। रूपक में गौणी

(१८) तुल्ययोगितालङ्कारः

क्रियादिभिरनेकस्य तुल्यता तुल्ययोगिता ।
सङ्कुचन्ति सरोजानि स्वैरिणीवदनानि च ॥३६॥
प्राचीनाचलचूढ़ाग्रचुम्बिबिम्बे सुधाकरे ॥

सारोपा लक्षणा होती है और अतिशयोक्ति में गौणी साध्यवसाना लक्षणा होती है ।

उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति—

दोनों ही अध्यवसाय मूलक अलङ्कार हैं किन्तु उत्प्रेक्षा में अध्यवसाय के साध्य होने के कारण विषय का शब्दतः उपादान होता है और अतिशयोक्ति में अध्यवसाय के सिद्ध होने के कारण विषय का शब्दतः उपादान नहीं होता, वल्कि विषयी (उपमान) के द्वारा विषय (उपमेय) का निगरण कर लिया जाता है । उत्प्रेक्षा में उपमेय में उपमान की सम्भावना होती है और अतिशयोक्ति में उपमान के द्वारा उपमेय का निगरण होता है । उत्प्रेक्षा में संशय रहता है और अतिशयोक्ति में संशय का अभाव रहता है ।

(१८) तुल्ययोगिता अलङ्कार

१८—क्रिया, गुण आदि के द्वारा जहाँ पर प्रस्तुत अथवा अप्रस्तुत में समानता बताई जाय, वहाँ पर 'तुल्ययोगिता' अलङ्कार होता है । जैसे, चन्द्रमा के उदयाचल पर्वत के शिखर के चुम्वन करने पर कमल और व्यभिचारिणी स्त्रियों के मुख संकुचित हो गये अर्थात् मलिन हो गये ।

विमर्श—जयदेव के अनुसार तुल्ययोगिता अलङ्कार वहाँ होता है जहाँ पर प्रस्तुत अथवा अप्रस्तुत में एक धर्माभिसम्बन्ध हो । तुल्ययोगिता का लक्षण है—

'क्रियादिभिरनेकस्य तुल्यता तुल्ययोगिता ।'

अर्थात् जहाँ पर दो प्रस्तुतों अथवा वो अप्रस्तुतों में क्रिया रूप अथवा गुण के साथ समानता (तुल्यता) वतायी जाय, वहाँ 'तुल्ययोगिता' नामक अलङ्कार होता है । जैसे—

"सङ्कुचन्ति सरोजानि स्वरिणीवदनानि च ।"

अर्थात् चन्द्रोदय होने पर कमल और व्यभिचारिणी स्त्रियों के मुख सङ्कुचित हो जाते हैं । भाव यह कि चन्द्रमा के उदय होने पर कमल

(१९) दीपकालङ्कारः
प्रस्तुताप्रस्तुतानां च तुल्यत्वे दीपकं मतम्।
मेधां बुधः सुधामिन्दुर्विभर्त्ति वसुधां भवान् ।।३७।।

सङ्कुचित हो जाते हैं और चन्द्रमा के प्रकाश में व्यभिचारिणी स्त्रियाँ नहीं निकल पाती, इससे उनका मुख मलिन हो जाता है। यहाँ पर कमल और व्यभिचारिणी स्त्री का मुख दोनों प्रस्तुत है। दोनों सङ्कोच रूप एक ही क्रिया की समानता दिखाई गयी है अतः यहाँ 'तुल्ययोगिता' अलङ्कार है।

एक दूसरा उदाहरण—

त्वदङ्गमार्दवे दृष्टे कस्य चित्ते न भासते।
मालतीशशभृल्लेखाकदलीनां कठोरता ।।

'हे प्रिये ? तुम्हारे अङ्ग की कोमलता देख लेने पर किसके चित्त में मालती, चन्द्रकला और कदली में कठोरता का अनुभव नही होगा ?' यहाँ पर दोनों अप्रस्तुत हैं अतः इनमें कठोरता रूप गुण का सम्बन्ध वर्णित है। अतः 'तुल्ययोगिता' अलङ्कार है।

(१९) दीपक अलङ्कार

(१९) जहाँ पर प्रस्तुत (वर्ण्य) और अप्रस्तुत (अवर्ण्य) दोनों में समानता बताई जाय, वहाँ दीपक अलङ्कार होता है। जैसे—विद्वान् (मनुष्य) बुद्धि को, चन्द्रमा अमृत को और आप पृथ्वी को धारण करते हैं। यहाँ पर समान धर्म होने से 'दीपक' अलङ्कार है।

विमर्श—चन्द्रालोककार जयदेव ने दीपक का लक्षण निम्न प्रकार दिया है—

"प्रस्तुताप्रस्तुतानां च तुल्यत्वे दीपकं मतम्।"

अर्थात् जहाँ पर प्रस्तुत (प्राकरणिक) और अप्रस्तुत (अप्राकरणिक) में एक धर्म बताया जाय वहाँ 'दीपक' अलङ्कार होता है। तात्पर्य यह कि प्रस्तुत और अप्रस्तुत में एकधर्माभिसम्बन्ध को 'वीपक' अलङ्कार कहते हैं। जैसे—

"मेधां बुधः सुधामिन्दुर्विभर्त्ति वसुधां भवान्।"

अर्थात् विद्वान् पुरुष बुद्धि को, चन्द्रमा अमृत को और आप पृथ्वी को धारण करते हैं। यहाँ पर बुध और चन्द्रमा का वर्णन अप्रस्तुत है और राजा

(२०) प्रतिवस्तूपमालङ्कारः

वाक्ययोरर्थसामान्ये प्रतिवस्तूपमा मता।
तापेन भ्राजते सूर्यः शूरश्चापेन राजते ॥३८॥

प्रस्तुत (राजा) और अप्रस्तुत (बुध, चन्द्रमा) का धारण क्रिया रूप एक धर्म के साथ सम्बन्ध दिखाया गया है। अतः यहाँ 'दीपक' अलङ्कार है।

दीपक और तुल्ययोगिता—

दीपक और तुल्ययोगिता दोनों ही गम्यौपम्यमूलक अलङ्कार हैं और दोनों में ही एकधर्माभिसम्वन्ध वताया जाता है, किन्तु दोनों में अन्तर यह है कि दीपक अलङ्कार में प्रस्तुत और अप्रस्तुत में समानता वताई जाती है और तुल्ययोगिता में समस्त वाक्य या तो प्रस्तुत होते हैं या अप्रस्तुत होते हैं अर्थात् प्रस्तुत का प्रस्तुत के साथ तथा अप्रस्तुत का अप्रस्तुत के साथ समानता वताई जाती है जवकि दीपक में प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत में समानता वताई जाती है।

(२०) प्रतिवस्तूपमा अलङ्कार

जहाँ पर उपमान और उपमेय दोनों वाक्यों में अर्थों में समानता वताई जाय, वहाँ 'प्रतिवस्तूपमा' अलङ्कार होता है। जैसे, सूर्य तेज से शोभता है और शूर धनुष से शोभित होता है। यहाँ 'प्रतिवस्तूपमा' अलङ्कार है।

विमर्श—चन्द्रालोककार जयदेव ने प्रतिवस्तूपमा अलङ्कार का लक्षण निम्न प्रकार वताया है—

"वाक्ययोरर्थसामान्ये प्रतिवस्तूपमा मता।"

अर्थात् जहाँ पर उपमान और उपमेय दोनों वाक्यों में एक ही समान धर्म का पृथक्-पृथक् रूप से निर्दिष्ट किया जाय वहाँ पर 'प्रतिवस्तूपसा' नामक अलङ्कार होता है। जैसे—

"तापेन भ्राजते सूर्यः शूरश्चापेन राजते।"

अर्थात् 'सूर्य तेज के कारण शोभित होता है और शूरवीर पुरुष धनुष से शोभित होता है।' इस उदाहरण में दोनों वाक्यों (उपमानवाक्य सूर्य और उपमेयवाक्य शूर) में शोभन (सुशोभित होना) रूप एक ही समान धर्म का 'भ्राजते' और 'राजते' पदों के द्वारा अलग-अलग निर्देश किया गया है। अतः यहां 'प्रतिवस्तूपमा' अलङ्कार है।

(२१) दृष्टान्तालङ्कारः

चेद् बिम्बप्रतिबिम्बत्वं दृष्टान्तस्तदलङ्कृतिः ।
स्यान्मल्लप्रतिमल्लत्वे संग्रामोद्दामहुङ्कृतिः ॥३६॥

उपमा और प्रतिवस्तूपमा—

उपमा और प्रतिवस्तूपमा दोनों ही सादृश्यमूलक अलङ्कार है किन्तु उपमा में सादृश्य वाच्य होता है जवकि प्रतिवस्तूपमा में सादृश्य व्यङ्ग्य (गम्य) होता है। उपमा में दो पदार्थों में समानता बताई जाती है और प्रतिवस्तूपमा में दो वाक्यार्थों में समानता वताई जाती है। उपमा में साधारण धर्म एक वाक्य के द्वारा व्यक्त किया जाता है जवकि प्रतिवस्तूपमा में साधारण धर्म दो अलग-अलग पदों द्वारा व्यक्त किया जाता हैं।

प्रतिवस्तूपमा और अर्थान्तरन्यास—

दोनों ही सादृश्यमूलक अलङ्कार हैं और दोनों में ही परस्पर निरपेक्ष दो वाक्य होते हैं किन्तु अर्थान्तरन्यास में दोनो में समर्थ्य-समर्थकभाव होता है जवकि प्रतिवस्तूपमा में उपमानोपमेयभाव होता है। अर्थान्तरन्यास में सामान्य से विशेष का और विशेष से सामान्य का समर्थन होता है और प्रतिवस्तूपमा में सामान्य से सामान्य का और विशेष से विशेष का समर्थन होता है।

(२१) दृष्टान्त अलङ्कार

२१—जहाँ पर उपमान और उपमेय में विम्वप्रतिविम्वभाव हो, वहाँ 'दृष्टान्त' अलङ्कार होता है। जैसे, मल्ल और प्रतिमल्ल अर्थात् योद्धा-प्रतियोद्धाओं के होने पर संग्रामभूमि में घोर हुङ्कार होता है।

विमर्श—जयदेव ने विम्वप्रतिविम्वभाव को दृष्टान्त अलङ्कार कहा है। उन्होंने लिखा है—

"चेद् बिम्बप्रतिबिम्बत्वं दृष्टान्तस्तदलङ्कृतिः ।"

अर्थात् जहाँ पर उपमान वाक्य और उपमेय वाक्य दोनों में निर्दिष्ट धर्मों में बिम्वप्रतिविम्वभाव पाया जाय, वहाँ पर 'दृष्टान्त' नामक अलङ्कार होता है। जैसे—

"स्यान्मल्लप्रतिमल्लत्वे संग्रामोद्दामहुङ्कृतिः ।"

अर्थात् योद्धा-प्रतियोद्धा (दो प्रतिस्पर्द्धी योद्धाओं के) होने पर रणभूमि में

(२२) निदर्शनालङ्कारः

वाक्यार्थयोः सदृशयोरैक्यारोपो निदर्शना ।
या दातुः सौम्यता सेयं सुधांशोरकलङ्कता ॥४०॥

घोर हुँकार होने लगता है । यहाँ पर मल्ल-प्रतिमल्ल में विम्वप्रतिबिम्वभाव है अतः यहाँ पर 'दृष्टान्त' अलङ्कार है ।

उपर्युक्त उदाहरण के स्पष्ट न होने से जयदेव ने दूसरा उदाहरण प्रस्तुत किया है—

दृष्टान्तश्चेदभवन्मूर्त्तिस्तन्मृष्टा दैवदुर्लिपिः ।
जाता चेत्प्राक्प्रभाभानोस्तर्हि याता विभावरी ॥

"कोई भक्त कहता है—हे भगवान् ! यदि आप का रूप अन्तःकरण में अनुभव कर लिया जाय अर्थात् आपके रूप का चित्त में साक्षात्कार कर लिया जाय तो भाग्य की दुर्लिपि मिट जाय । जैसे सूर्य की कान्ति यदि पूर्व दिशा में उत्पन्न हो जाय तो अन्धकार नष्ट हो जाता है ।" यहाँ पर दोनों वाक्यों में परस्पर विम्वप्रतिबिम्वभाव होने से 'दृष्टान्त' अलङ्कार है ।

दृष्टान्त और प्रतिवस्तूपमा—

इन दोनों अलङ्कारों में दो स्वतन्त्र वाक्य होते है, एक प्रस्तुत (उपमेय) और दूसरा अप्रस्तुत (उपमान) वाक्य होता है और दोनों हीं में सादृश्य गम्य (व्यङ्ग्य) होता है किन्तु दृष्टान्त के दोनों वाक्यों में साधारण धर्म अलग-अलग होता है जबकि प्रतिवस्तूपमा में दोनों वाक्यों में एक ही साधारण धर्म होता है और उसका अलग-अलग शब्दों में निर्देश होता है । दृष्टान्त में विम्बप्रतिविम्बभाव होता है और प्रतिवस्तूपमा में वस्तु-प्रतिवस्तुभाव होता है ।

दृष्टान्त और उपमा—

दोनों सादृश्यमूलक अलङ्कार हैं किन्तु उपमा में समान धर्म एक होता है जबकि दृष्टान्त में समान धर्म दो होते हैं और वे उभयनिष्ठ नहीं होते । उपमा में उपमावाचक शब्द का प्रयोग होता है और दृष्टान्त में उपमा वाचक शब्द नहीं होता है । उपमा में सादृश्य वाच्य होता है और दृष्टान्त में गम्य होता है ।

(२२) निदर्शना अलङ्कार

२२. जहाँ पर दो समान वाक्यार्थों में ऐक्य का आरोप अर्थात् दोनों में

अभेदारोप होता है वहाँ 'निदर्शना' अलङ्कार होता है। जैसे, दानी में जो सौम्यता है वही चन्द्रमा में निष्कलङ्कता है। यहाँ निदर्शना अलङ्कार है।

विमर्श—निदर्शना अलङ्कार में दो समान वाक्यार्थों में एकता पाई जाती है। जयदेव ने निदर्शना का लक्षण वताया है—

"वाक्यार्थयोः सदृशयोरैक्यारोपो निदर्शना।

अर्थात् जहाँ पर दो समान वाक्यार्थों में अभेदारोप हो अर्थात् जहाँ पर उपमेयवाक्यार्थ में उपमान वाक्यार्थ का अभेद आरोप होता है वहाँ 'निदर्शना' नामक अलङ्कार होता है। जैसे—

"या दातुः सौम्यता सेयं सुधांशोरकलङ्कता।"

अर्थात् दानी व्यक्ति में जो सौम्यता है वही चन्द्रमा में कलङ्कहीनता है।" यहाँ पर दो समान वाक्यार्थ हैं—(१) दाता की सौम्यता और (२) चन्द्रमा की निष्कलङ्कता। इनसे पहला वाक्य उपमेय और दूसरा वाक्य उपमान है। दोनों वाक्यार्थों में 'या' (यत्) और 'सा' 'तद्) पदों के प्रयोग द्वारा एकता का आरोप किया गया है अतः यहाँ 'निदर्शना' अलङ्कार है।

निदर्शना अलङ्कार का एक अन्य उदाहरण—

'क्वसूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः।
तितीर्षुः दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्॥

"कहाँ तो सूर्यवंश का वर्णन? और कहाँ मेरी अल्प ज्ञान वाली बुद्धि? तथापि में अज्ञानवश छोटी नौका से दुस्तर (अपार) समुद्र पार करना चाहता हूँ।" यहाँ पर 'अल्पबुद्धि' से सूर्यवंश का वर्णन करना छोटी नौका से समुद्र पार करने के समान हैं, दोनों वाक्यों में अन्वय-वोध के लिए उपमा की कल्पना की गई है अतः यहाँ 'निदर्शना' अलङ्कार है।

निदर्शना और दृष्टान्त—

निदर्शना और दृष्टान्त दोनों ही औपम्य गम्य होते हैं, दोनों में ही विम्ब-प्रतिविम्वभाव पाया जाता है और दोनों में ही सादृश्य वाक्यार्थगत होता है, किन्तु दृष्टान्त में अनेक वाक्य परस्पर निरपेक्ष होते हैं जबकि निदर्शना में वाक्य परस्पर सापेक्ष होते हैं। दृष्टान्त अलङ्कार में प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों वाक्यों में अलग-अलग धर्म होते हैं और उनका स्पष्ट निर्देश किया जाता है

(२३) व्यतिरेकालङ्कारः

व्यतिरेको विशेषश्चेदुपमानोपमेययोः।
शैला इवोन्नताः सन्तः किन्तु प्रकृतिकोमलाः ॥४१॥

तथा निदर्शना में ये धर्म अभिन्न होते हैं और इनका निर्देश नहीं किया जाता है।

निदर्शना और प्रतिवस्तूपमा—

निदर्शना और प्रतिवस्तूपमा दोनों सादृश्यमूलक अलङ्कार हैं और दोनों में ही सादृश्य गम्य (व्यङ्ग्य) होता है तथा दोनों में ही दो वाक्य होते हैं किन्तु निदर्शना में दोनों वाक्य अर्थात् उपमानवाक्य और उपमेयवाक्य परस्पर सापेक्ष होते हैं जबकि प्रतिवस्तूपमा में दोनों वाक्य परस्पर निरपेक्ष अर्थात् स्वतन्त्र होते हैं। निदर्शना में साधारण धर्म का शब्दतः उपादान नहीं होता उसका आक्षेप होता है जबकि प्रतिवस्तूपमा में दोनों वाक्यों में साधारण धर्म अलग-अलग शब्दों में निर्दिष्ट होता है।

निदर्शना और रूपक—

निदर्शना और रूपक दोनों ही अभेदमूलक अलङ्कार हैं और दोनों में ही आरोप होता है किन्तु रूपक में उपमेय पर उपमान का ताद्रूप्य आरोप होता है जबकि निदर्शना में दो पदार्थों में 'यत्' और 'तत्' पद के द्वारा परस्पर एकता का आरोप किया जाता है। रूपक में एक वाक्य होता है और निदर्शना में दो वाक्य होते हैं और वे परस्पर सापेक्ष होते हैं।

(२३) व्यतिरेक अलङ्कार

२३—जहाँ पर उपमान और उपमेय में विशेषता पाई जाय, वहाँ 'व्यतिरेक' अलङ्कार होता है। जैसे, सज्जन पर्वत के समान उन्नत होते हैं किन्तु स्वभाव से कोमल होते हैं। यहाँ व्यतिरेक अलङ्कार है।

विमर्श—व्यतिरेक का अर्थ है आधिक्य अर्थात् जहाँ पर उपमेय का आधिक्य बताया जाता है वहाँ 'व्यतिरेक' अलङ्कार होता है। जयदेव ने व्यतिरेक का लक्षण लिखा है—

"व्यतिरेको विशेषश्चेदुपमानोपमेययोः"

अर्थात् जहां पर उपमान और उपमेय में परस्पर विशेषता बताई जाय

वहाँ 'व्यतिरेक' अलङ्कार होता है। भाव यह कि जहाँ पर उपमान की अपेक्षा उपमेय की अधिकता या न्यूनता बताई जाय, वहां 'व्यतिरेक' नामक अलङ्कार होता है।

व्यतिरेक अलङ्कार में उपमान की अपेक्षा उपमेय का आधिक्य बताया जाता है या उपमेय की न्यूनता बताई जाती है। तात्पर्य यह कि दोनों में उपमेय की अधिकता या उपमान की अधिकता बताये जाने पर 'व्यतिरेक' होता है।

उपमेयाधिक्य का उदाहरण—

"शैला इवोन्नताः सन्तः किन्तु प्रकृतिकोमलाः।"

अर्थात् सज्जन पुरुष पर्वत के समान उच्च, किन्तु स्वभाव के कोमल होते हैं। भाव यह कि पर्वत ऊँचा होता है किन्तु स्वभावतः कठोर होता है और सज्जन पुरुष पर्वत के समान उच्च अर्थात् उन्नतशील होते हैं किन्तु स्वभाव में अत्यन्त कोमल होते हैं।

यहाँ पर पर्वत उपमान है और सज्जन पुरुष उपमेय। दोनों में उन्नत (ऊँचे) होने में समानता है किन्तु सज्जन पुरुष में कोमलता गुण विशेष है। इस प्रकार उपमान (पर्वत) की अपेक्षा उपमेय (सज्जन) की अधिकता बताये जाने के कारण यहाँ 'व्यतिरेक' अलङ्कार है।

उपमेय की न्यूनता और उपमान की अधिकता का उदाहरण निम्न है—

'क्षीणः क्षीणोऽपि शशी भूयः भूयोऽपि वर्धते नित्यम्।
विरम प्रसीद सुन्दरि यौवनमनिवर्त्ति यातं तु।"

"चन्द्रमा तो बार-बार क्षीण होता है और बार-बार बढ़ भी जाता है किन्तु हे सुन्दरि ? यौवन यदि एक बार चला जाता है तो फिर लौट कर नहीं आता। अतः प्रसन्न ही जाओ।"

यहाँ पर उपमानभूत चन्द्रमा की अपेक्षा उपमेयरूप यौवन की न्यूनता का वर्णन है। अतः उपमेय की न्यूनता तथा उपमान की अधिकता का वर्णन होने के कारण 'व्यतिरेक' अलङ्कार है।

व्यतिरेक और प्रतीप—

व्यतिरेक और प्रतीप दोनों ही सादृश्यमूलक अलङ्कार हैं किन्तु प्रतीप में उपमान की व्यर्थता बताई जाती है जबकि व्यतिरेक में उपमान और उपमेय की व्यर्थता न दिखाकर न्यूनाधिक्यभाव दिखाया जाता है।

(२४) समासोक्तिरलङ्कारः

समासोक्तिः परिस्फूर्तिः प्रस्तुतेऽप्रस्तुतस्य चेत् ।
अयमैन्द्रीमुखं पश्य रक्तश्चुम्बति चन्द्रमाः ॥४२॥

---

(२४) समासोक्ति अलङ्कार

२४—जहाँ पर प्रस्तुत (प्राकरणिक) से अप्रस्तुत (अप्राकरणिक) की (व्यञ्जना, प्रतीति) हो, वहाँ 'समासोक्ति' अलङ्कार होता है। जैसे, देखो, यह रक्त वर्ण (लाल) चन्द्रमा पूर्व दिशा (नायिका) के मुख को चूम रहा है।'

विमर्श—जयदेव ने समासोक्ति अलङ्कार का लक्षण निम्न प्रकार दिया है—

'समासोक्तिः परिस्फूर्त्तिः प्रस्तुतेऽप्रस्तुतस्य चेत् ।"

अर्थात् यदि प्रस्तुत में अप्रस्तुत की व्यञ्जना की जाय तो समासोक्ति अलङ्कार होता है। भाव यह कि जहाँ पर प्रस्तुत (प्राकरणिक) वस्तु के वर्णन में समान विशेषणों के द्वारा अप्रस्तुत की व्यञ्जना होती है वहाँ 'समासोक्ति' नामक अलङ्कार होता है। समासोक्ति का अर्थ है संक्षिप्त कथन अर्थात् समासोक्ति में प्रस्तुत-अप्रस्तुत दोनों की प्रतीति होती है।

उदाहरण जैसे—

'अयमैन्द्रीमुखं पश्य रक्तश्चुम्बति चन्द्रमाः ।'

"देखो, यह रक्त चन्द्रमा पूर्वादिशा के मुख (इन्द्राणी के मुख) का चुम्बन कर रहा है।" तात्पर्य यह कि यहाँ पर प्रस्तुत चन्द्रोदय वर्णन है। पूर्व दिशा में चन्द्रोदय हो रहा है उसका वर्ण रक्त (लाल) है। यहाँ पर प्रस्तुत चन्द्रोदय वर्णन से नायक-नायिका के वृत्तान्त का आरोप हो रहा है। देखो, रक्त चन्द्रमा पूर्व दिशा के मुख का चुम्बन कर रहा है, अर्थात् नायक नायिका के मुख का चुम्बन कर रहा है।

यहाँ पर चन्द्रमा के पुल्लिङ्ग होने से उस पर नायक के और 'ऐन्द्री' के स्त्रीलिङ्ग होने से उस पर नायिका के व्यवहार का आरोप है। इस प्रकार यहाँ पर 'अनुरक्त नायक परकीया नायिका के मुख का चुम्बन कर रहा है' इस अप्रस्तुत अर्थ की प्रतीति होने से 'समासोक्ति' अलङ्कार है।

समासोक्ति का एक अन्य उदाहरण—

अनुरागवती सन्ध्या दिवसस्तत्पुरःसर ।
अहो दैवगतिश्चित्रा तथापि न समागमः ॥

(२५) श्लेषालङ्कारः
(क)—खण्डश्लेष

खण्डश्लेषः पदस्तोमस्यैव चेत्पृथगर्थता।
उच्छलद्भूरिकीलालः शुशुभे वाहिनीपतिः ॥४३॥

"सन्ध्या (सन्ध्यारूपी नायिका) अनुराग (लालिमा, प्रेम) से युक्त है और दिन (नायक) उसके सामने है, फिर भी दोनों का समागम नहीं हो रहा है, अहो दैवगति कितनी विचित्र है ?" यहाँ पर सन्ध्या और दिन पर नायिका और नायक का आरोप होने से 'समासोक्ति' अलङ्कार है।

समासोक्ति और रूपक—

समासोक्ति और रूपक दोनों ही सादृश्यमूलक अलङ्कार हैं। किन्तु रूपक में प्रकृत पर अप्रकृत का आरोप होता है जबकि समासोक्ति में प्रकृत (प्रस्तुत) के व्यवहार में अप्रकृत (अप्रस्तुत) के व्यवहार का आरोप होता है। रूपक में अप्रस्तुत का कथन अभिधा के द्वारा होता है और समासोक्ति में अप्रस्तुत का कथन व्यञ्जना के द्वारा होता है।

(२५) श्लेष अलङ्कार

२५—चन्द्रालोककार जयदेव ने श्लेष अलङ्कार का सामान्य लक्षण नहीं किया है। उन्होंने श्लेष अलङ्कार के प्रथमतः दो भेद किये हैं—शब्दश्लेष और अर्थश्लेष। इन्हें ही क्रमशः अर्थात् शब्दश्लेष को सभङ्गश्लेष और अर्थश्लेष को अभङ्गश्लेष कहते हैं। कुछ विद्वान् दोनों को शब्दालङ्कार के अन्तर्गत परिगणित करते हैं। जयदेव ने शब्दश्लेष के दो प्रकार बताये हैं—खण्डश्लेष और पदश्लेष। इनमें पहले वे खण्डश्लेष का लक्षण करते हैं—

(क) खण्डश्लेष

'खण्डश्लेषः पदानां चेदेकैकं पृथगर्थता।'

अर्थात् जहाँ पर प्रत्येक वाक्य में पदों का अर्थ अलग-अलग किया जाय, वहाँ 'खण्डश्लेष' होता है तात्पर्य यह कि जब एक पद के दो अर्थ होते हैं और वे अलग-अलग रूप में दो वाक्यों से अन्वित होते हैं तब 'खण्डश्लेष' होता है। उदाहरण जैसे—

"उच्छलद्भूरिकीलालः शुशुभे वाहिनीपतिः।"

अर्थात् उठते हुए प्रचुर कीलाल (रक्त, जल) से युक्त वाहिनीपति

(ख) पदश्लेषः (भङ्गश्लेष)

भङ्गश्लेषः पदस्तोमस्यैव चेत् पृथगर्थता ।
अजरामरता कस्य नायोध्येव पुरी प्रिया ।।४४।।

(ग) अर्थश्लेषः

अर्थश्लेषोऽर्थमात्रस्य यद्यनेकार्थसंश्रयः ।
कुटिलाः श्यामलाः दीर्घाः कटाक्षाः कुन्तलाश्च ते ।।४५।।

(सेनापति, समुद्र) शोभा को प्राप्त हुआ । यहाँ पर 'उच्छलद्भूरिकीलालः' पद के 'कीलाल' खण्ड का रक्त और जल रूप अर्थ उपस्थित होने से तथा 'वाहिनीपति' पद के 'वाहिनी' खण्ड से 'सेना' और 'नदी' रूप अर्थ उपस्थित होने से 'खण्डश्लेष' है ।

(ख) पदश्लेष या भङ्गश्लेष

जहाँ पर पदसमूह (समस्तपद) का ही अलग-अलग अर्थ हो, वहाँ 'भङ्गश्लेष' होता है । जयदेव ने 'भङ्गश्लेष' का लक्षण इस प्रकार दिया है—

"भङ्गश्लेषः पदस्तोमस्यैव चेत् पृथगर्थता ।"

अर्थात् जहाँ पद-समूह का ही अलग-अलग अर्थ हो, वहाँ भङ्गश्लेष होता है । इसी को 'सभङ्गश्लेष' भी कहते हैं । उदाहरण जैसे—

"अजरामरता कस्य नायोध्येव पुरी प्रिया ।"

अर्थात् अयोध्यानगरी के समान 'अजरतामरता' किसे प्रिय नहीं है । यहाँ सभङ्गश्लेष है । यहाँ पर 'अजरतामरता' पद में श्लेष है । 'अजरतामरता' का एक अर्थ है 'अजरत्व' और 'अमरत्व' । और दूसरा अर्थ है—अज + राम + रता अर्थात् अज और राम में रत अयोध्या पुरी किसे प्रिय नहीं है । इस प्रकार इसका अर्थ होगा कि 'अज और राम में अनुरक्त अयोध्या नगरी किसे प्रिय नही है अथवा अयोध्या पुरी के समान अजरत्व और अमरत्व किसे प्रिय नहीं है ?" यहाँ पर अजरामरता पद में 'भङ्गश्लेष' अलङ्कार है ।

(ग) अर्थश्लेष

जयदेव ने अर्थश्लेष का लक्षण दिया है—

'अर्थश्लेषोऽर्थमात्रस्य यद्यनेकार्थसंश्रयः ।"

अर्थात् जहाँ पर वाच्यार्थ (केवल एक अर्थ) का अनेक अर्थों के साथ

(२६) अप्रस्तुतप्रशंसालंकारः

अप्रस्तुतप्रशंसा स्यात् सा यत्र प्रस्तुतानुगा।
कार्यकारणसामान्यविशेषादेरसौ मता ॥४६॥

कमलैः कमलावासैः किं किं नासादि सुन्दरम्।
अप्यामबुधेः परं पारं प्रयान्ति व्यवसायिनः ॥४७॥

सम्बन्ध हो वहाँ 'अर्थश्लेष' अलङ्कार होता है। जैसे—

"कुटिलाः श्यामलाः दीर्घा कटाक्षाः कुन्तलाश्च ते।"

'यहाँ पर कोई व्यक्ति अपनी प्रिया से कह रहा है कि हे प्रिये तुम्हारे कटाक्ष और वाल दोनों ही कुटिल (टेढ़े), काले और लम्वे हैं।' यहाँ पर 'कुटिलादि' पदार्थों का सम्बन्ध 'कटाक्ष' और 'केश' इन दोनों अर्थों से है। अतः यहाँ अर्थश्लेष है। यहाँ पर यदि कुटिलादि के स्थान पर तत्पर्यायवाची किसी अन्य शब्द को रख दिया जाय तो भी श्लेषत्व की हानि नहीं होती।

२६—अप्रस्तुतप्रशंसा अलङ्कार

२६—जहाँ पर अप्रस्तुत वृत्तान्त के वर्णन के द्वारा प्रस्तुत वृत्तान्त की अभिव्यक्ति (प्रतीति) कराई जाती है वहाँ 'अप्रस्तुतप्रशंसा' अलङ्कार होता है। यह कार्य-कारण, सामान्य-विशेष आदि के सन्वन्ध से होती है।

विमर्श—जयदेव ने अप्रस्तुतप्रशंसा अलङ्कार का लक्षण निम्न प्रकार दिया है—

"अप्रस्तुतप्रशंसा स्यात् सा यत्र प्रस्तुतानुगा।"
कार्यकारणसामान्यविशेषादेरसौ मता ॥

अर्थात् जहाँ पर अप्रस्तुतवृत्तान्त के द्वारा प्रस्तुत वृत्तान्त की अभिव्यक्ति (प्रतीति) कराई जाती है वहाँ 'अप्रस्तुतप्रशंसा' नामक अलङ्कार होता है। इसमें अप्रस्तुत का अभिधा से और प्रस्तुत का व्यञ्जना से प्रतीति होती है। अप्रस्तुत के द्वारा प्रस्तुत की प्रतीति कोई सम्वन्ध होने पर ही होती है। यह सम्बन्ध पाँच प्रकार से होता है—(१) कार्य-कारण सम्वन्ध (२) कारण-कार्य सम्वन्ध (३) सामान्य-विशेष सम्वन्ध (४) विशेष-सामान्य सम्वन्ध और (५) सारूप्यनिबन्धन सम्वन्ध। इस प्रकार अप्रस्तुतप्रशंसा के पाँच प्रकार

होते हैं। जयदेव ने पाँचों का उदाहरण नहीं दिया है उन्होंने केवल दो प्रकारों का उदाहरण प्रस्तुत किया है।

प्रथम उदाहरण सामान्य के द्वारा विशेष की प्रतीति—

'कमलैः कमलावासैः किं किं नासादि सुन्दरम्।'

अर्थात् लक्ष्मी के आश्रय (आवास) रूप कमलों ने कौन-कौन सी सुन्दर वस्तु प्राप्त नहीं की ? अर्थात् सभी कुछ प्राप्त कर लिया। यहाँ पर अप्रस्तुत कमल-कथा के वर्णन के द्वारा प्रस्तुत किसी धार्मिक के वृत्तान्त की अभिव्यक्ति (प्रतीति) होती है। अर्थात् धनियों ने धन के बल से सब कुछ प्राप्त कर लिया। इस प्रकार यहाँ अप्रस्तुत सामान्य कमल-वृत्तान्त के द्वारा प्रस्तुत विशेष धनिक-वृत्तान्त की प्रतीति होने से 'अप्रस्तुतप्रशंसा' अलङ्कार है।

विशेष से सामान्य की प्रतीति का उदाहरण—

"अप्यम्बुधेः परं पारं प्रयान्ति व्यवसायिनः।"

अर्थात् व्यवसायी पुरुष समुद्र के पार दूसरे किनारे पर भी पहुँच जाते हैं। यहाँ पर 'समुद्रयान' रूपी विशेष के द्वारा 'व्यवसायियों' अर्थात् उद्योगियों के लिए कोई कार्य असम्भव नहीं है, इस सामान्य की अभिव्यक्ति हो रही है। अतः यहाँ अप्रस्तुतप्रशंसा अलङ्कार है।

दृष्टान्त और अप्रस्तुतप्रशंसा—

दृष्टान्त और अप्रस्तुतप्रशंसा दोनों ही सादृश्यमूलक अलङ्कार है। दोनों में ही प्रस्तुत के लिए अप्रस्तुत पदार्थ का प्रयोग किया जाता है किन्तु दृष्टान्त अलङ्कार में दोनों (प्रस्तुत और अप्रस्तुत) का वाच्य रूप में प्रयोग होता है और अप्रस्तुतप्रशंसा में अप्रस्तुत वाच्य होता है और प्रस्तुत व्यङ्ग्य होता है।

अप्रस्तुतप्रशंसा और समासोक्ति—

समासोक्ति और अप्रस्तुतप्रशंसा दोनों में ही औपम्य गम्य होता है और दोनों ही में दो अर्थों की अभिव्यक्ति होती है—एक वाच्यार्थ दूसरा व्यङ्ग्यार्थ। किन्तु समासोक्ति में वाच्यार्थ प्रस्तुत विषयक होता है और अप्रस्तुत की व्यञ्जना होती है जबकि अप्रस्तुतप्रशंसा में वाच्यार्थ अप्रस्तुत विषयक होता है और प्रस्तुत की व्यञ्जना होती है।

(२७) अर्थान्तरन्यासालङ्कारः

भवेदर्थान्तरन्यासोऽनुषक्तार्थान्तराभिधा ।
हनूमानब्धिमतरद् दुष्करं किं महात्मनाम् ।।४८।।

---

(२७) अर्थान्तरन्यास अलङ्कार

२७—जहाँ पर मुख्य अर्थ के समर्थन के लिए अन्य अर्थ का अभिधान किया जाता है वहाँ अर्थान्तरन्यास अलङ्कार होता है। जैसे, हनुमान् जी ने समुद्र को पार कर लिया, महापुरुषों के लिए क्या दुष्कर होता है।

विमर्श—जयदेव ने अर्थान्तरन्यास का लक्षण किया है—

'भवेदर्थान्तरन्यासोऽनुषक्तान्तराभिधा'

अर्थात् जहाँ पर मुख्य अर्थ से सम्वद्ध अन्य अर्थ का कथन होता है वहाँ 'अर्थान्तरन्यास' अलङ्कार होता है। तात्पर्य यह कि जहाँ पर सामान्य के द्वारा विशेष का और विशेष से सामान्य का समर्थन किया जाता है वहाँ 'अर्थान्तरन्यास' नामक अलङ्कार हीता है। जैसे—

'हनूमानब्धिमतरद् दुष्करं किं महात्मनाम्।'

अर्थात् हनुमान् जी ने समुद्र को पार कर लिया, महापुरुषों के लिए कौन सा कार्य दुष्कर होता है। यहाँ पर 'हनुमान् ने समुद्र को पार कर लिया' इस विशेष का समर्थन 'महापुरुषों के लिए कौन कार्य कठिन है' इस सामान्य कथन के द्वारा किया गया है अतः यहाँ 'अर्थान्तरन्यास' अलङ्कार है।

उपर्युक्त उदाहरण में सामान्य से विशेष का समर्थन किया गया है। इसी प्रकार विशेष कथन द्वारा सामान्य का भी समर्थन होता है। और यह समर्थन साधर्म्य और वैधर्म्य के द्वारा भी होता है। इस प्रकार अर्थान्तरन्यास के कई भेद होते हैं। मम्मट ४ भेद और रुय्यक, विश्वनाथ ८ भेद तक मानते हैं। किन्तु चन्द्रालोक के रचयिता जयदेव ने एक ही उदाहरण प्रस्तुत किया है। अतः विस्तार के कारण हम अन्य भेदों का उदाहरण नहीं के रहे हैं। जयदेव ने केवल सामान्य के द्वारा विशेष के समर्थन का उदाहरण दिया है।

सामान्य का विशेष के द्वारा समर्थन का एक उदाहरण देखिये—

बृहत्सहायः कार्यान्तं क्षोदीयानपि गच्छति ।
सम्भूयाम्भोधिमभ्येति महानद्या नगापगा ।।"

अर्थात् बड़े लोगों की सहायता से छोटा व्यक्ति भी कार्य सिद्ध कर लेता है। जैसे बड़ी नदी से मिलकर छोटी नदी भी समुद्र तक पहुँच जाती है।

यहाँ पर पूर्वार्द्ध सामान्य का समर्थन उत्तरार्द्ध विशेष के द्वारा किया गया है अतः यहाँ 'अर्थान्तरन्यास' अलङ्कार है।

अर्थान्तरन्यास और दृष्टान्त—

दृष्टान्त और अर्थान्तरन्यास दोनों अलङ्कारों में परस्पर निरपेक्ष दो वाक्य होते हैं किन्तु दृष्टान्त औपम्यमूलक अलङ्कार हैं और अर्थान्तरन्यास तर्कमूलक अलङ्कार है। दृष्टान्त में दोनों वाक्यों में उपमानोपमेय भाव होता है और अर्थान्तरन्यास में सामर्थ्य-समर्थकभाव -होता है। दृष्टान्त में सामान्य का समर्थन सामान्य से विशेष का विशेष से होता है किन्तु अर्थान्तरन्यास में सामान्य का समर्थन विशेष के द्वारा और विशेष का सामान्य के द्वारा होता है। दृष्टान्त में दोनों वाक्य विशेष होते हैं और अर्थान्तरन्यास में एक विशेष होता है और दूसरा सामान्य। दृष्टान्त में बिम्ब-प्रतिबिम्बभाव पाया जाता है और अर्थान्तरन्यास में सामान्य-विशेषभाव होता है।

अर्थान्तरन्यास और प्रतिवस्तूपमा—

दोनों में ही परस्पर निरपेक्ष दो वाक्य होते हैं किन्तु प्रतिवस्तूपमा में दोनों वाक्यों में उपमानोपमेयभाव होता है और अर्थान्तरन्यास में दोनों में समर्थ्य-समर्थकभाव होता है। प्रतिवस्तूपमा में सामान्य का समर्थन सामान्य से और विशेष का विशेष से होता है जबकि अर्थान्तरन्यास में सामान्य का समर्थन विशेष के द्वारा और विशेष का सामान्य के द्वारा होता है। प्रतिवस्तूपमा में वस्तु-प्रतिवस्तुभाव होता है और अर्थान्तरन्यास में सामान्य-विशेष-भाव होता है।

निदर्शना और अर्थान्तरन्यास—

दोनों में ही दो वाक्य होते हैं किन्त निदर्शना अलङ्कार में दोनों वाक्य परस्पर सापेक्ष होते हैं और अर्थान्तरन्यास में दोनों परस्पर निरपेक्ष (स्वतन्त्र) वाक्य होते हैं। निदर्शना में दोनों वाक्यों में बिम्बप्रतिबिम्बभाव पाया जाता है और अर्थान्तरन्यास में साम न्यविदोषभाव होता है। निदर्शना में दोनों वाक्य प्रायः विशेष होते हैं और अर्थान्तरन्यास में एक सामान्य-परक होता है और दूसरा विशेष-परक।

(२८) व्याज-स्तुतिः

उक्तिर्व्याजस्तुतिर्निन्दास्तुतिभ्यां स्तुतिनिन्दयोः ।
कस्ते विवेको नयति स्वर्गं पातकिनोऽपि यत् ॥४६॥

२८—व्याजस्तुति अलङ्कार

२८—जहाँ पर निन्दा के द्वारा स्तुति की अथवा स्तुति के द्वारा निन्दा का कथन होता है वहाँ 'व्याजस्तुति' अलङ्कार होता है। जैसे, हे गङ्गे ? तुझमें यह कैसा विवेक है जो तुम पापियों को स्वर्ग ले जाती हो।

विमर्श—व्याजस्तुति का अर्थ है व्याज अर्थात् निन्दा के द्वारा स्तुति करना। व्याजस्तुति मुख्यतः दो प्रकार की होती है—(१) 'व्याजेन स्तुतिः इति व्याजस्तुतिः अर्थात् निन्दा के द्वारा स्तुति करना (२) निन्दारूपास्तुति अर्थात् निन्दा के द्वारा स्तुति करना। यह निन्दारूपास्तुति भी दो प्रकार की होती है—(१) स्तुति के द्वारा निन्दा की व्यञ्जना (२) एक के स्तुति द्वारा दूसरे की स्तुति की व्यञ्जना। इस प्रकार व्याजस्तुति तीन प्रकार की होती है। जयदेव ने व्याजस्तुति लक्षण निम्न प्रकार किया है—

'उक्तिर्व्याजस्तुतिर्निन्दास्तुतिभ्यां स्तुतिनिन्दयोः ।

अर्थात् जहाँ पर निन्दा के द्वारा स्तुति की व्यञ्जना हो और स्तुति के द्वारा निन्दा की व्यञ्जना हो वहाँ 'व्याजस्तुति' नामक अलङ्कार होता है। जयदेव ने एक ही प्रकार की व्याजस्तुति का उदाहरण प्रस्तुत किया है—

"कस्ते विवेको नयसि स्वर्गं पातकिनोऽपि यत् ।'

कोई भक्त गङ्गाजी के प्रति कह रहा है कि हे गङ्गे ! तुझमें यह कैसा विवेक है कि तुम पापियों को भी स्वर्ग पहुँचाती हो।'

इस उदाहरण में निन्दा के द्वारा स्तुति की व्यञ्जना की गई है। भक्त निन्दा के द्वारा गङ्गा की स्तुति कर रहा है। 'हे गङ्गे तुम बिल्कुल विवेकहीन हो जो कि पापियों को स्वर्ग ले जाती हो।' इस निन्दा कथन के द्वारा गङ्गा के लोकोत्तर महिमा की व्यञ्जना की जा रहीं है कि हे गङ्गे ! तुम पतितपावन हो जो कि पुण्यशालियों के समान पापियों को भी स्वर्ग ले जाती हो। अतः यहाँ पर 'व्याजस्तुति' नामक अलङ्कार है।

(२९) विरोधालंकारः

विरोधोऽनुपपत्तिश्चेद् गुणद्रव्यक्रियादिषु ।
अमन्दचन्दनस्यन्दः स्वच्छन्दं दन्दहीति माम् ॥५०॥

(३०) विरोधाभासालङ्कारः

श्लेषादिभूर्विरोधश्चेद् विरोधाभासता मता ।
अप्यन्धकारिणाऽनेन जगदेतत् प्रकाश्यते ॥५१॥

२९—विरोध अलङ्कार

२९—गुण, क्रिया, द्रव्य, जाति आदि में एक दूसरे से असंगति हो तो विरोधाभास अलङ्कार होता है। जैसे, चन्दन का पर्याप्त लेप भी मुझे अत्यन्त दग्ध कर रहा है।

विमर्श—जहाँ विरोध का आभास हो वहाँ विरोधाभास अलङ्कार होता है। जयदेव ने विरोध का लक्षण इस प्रकार दिया है—

'विरोधोऽनुपपत्तिश्चेद् गुणद्रव्यक्रियादिषु।"

तात्पर्य यह कि गुण, द्रव्य, क्रिया और जाति के सम्बन्ध में परस्पर एक दूसरे के विरुद्ध प्रतीत होने पर 'विरोध' नामक अलङ्कार होता है। उदाहरण जैसे—

"अमन्दचन्दनस्यन्दः स्वच्छन्दं दन्दहीति माम्।'

अर्थात् अत्यधिक चन्दन का लेप भी मुझे खूब जला रहा है। चन्दन का अत्यधिक लेप ताप को मिटाता है किन्तु यहाँ उसके विरुद्ध जला रहा है अतः असंगति प्रतीति हो रही है। किन्तु यह उक्ति विरहिणी नायिका की है, वियोगावस्था में चन्दनादि लेप भी सन्ताप कारक होते हैं अतः विरोध का आभास होने पर भी विरोध का परिहार हो जाता है किन्तु चन्दनादि लेप का सन्ताप (दन्दहीति) के साथ असंगति होने से यहाँ 'विरोध' अलङ्कार है।

३०—विरोधाभास अलङ्कार

३०—श्लेष आदि के द्वारा जहाँ विरोध उत्पन्न हो वहाँ 'विरोधाभास' अलङ्कार होता है। जैसे, अन्धकारी (अन्धक+अरि=शिव) अथवा (अन्ध+कारी=अन्धा बनाने वाले) के द्वारा यह जगत् प्रकाशित होता है।

विमर्श—विश्वनाथ आदि आचार्यों ने जहाँ पर विरोध का आभास हो उसे 'विरोधाभास' कहा है। जयदेव ने विरोधाभास का लक्षण इस प्रकार दिया है—

(३१) विभावनालङ्कारः

विभावना विनाऽपि स्यात् कारणं कार्यजन्म चेत् ।
पश्य, लाक्षारसासिक्तं रक्तं तच्चारणद्वयम् ।।५२।।

'श्लेषादिभिर्विरोधश्चेद् विरोधाभासता मता ।'

अर्थात् जहाँ पर श्लेष आदि के द्वारा विरोध उत्पन्न हो वहाँ 'विरोधाभास' नामक अलङ्कार होता है । अर्थात् जहाँ पर श्लेष के द्वारा 'विरोध' का आभास हो किन्तु विरोध का परिहार हो जाता हो, वहाँ पर विरोधाभास' नामक अलङ्कार होता है । जैसे—

"अप्यन्धकारिणाऽनेन जगदेतत् प्रकाश्यते ।"

अर्थात् अन्धकारी अर्थात् अन्धकार को फैलाने वाले (शिव) के द्वारा यह जगत् प्रकाशित होता है । जो अन्धकार को फैलाता है वह जगत् को कैसे प्रकाशित कर सकता है ? यह विरोध आभासित होता है । इस विरोध का परिहार इस प्रकार होगा—अन्धकारी अर्थात् (अन्धक+अरि) अन्धकासुर के अरि (शत्रु) भगवान् शङ्कर के द्वारा यह जगत् प्रकाशित होता है । यतः यहाँ 'विरोधाभास' नामक अलङ्कार है ।

३१—विभावना अलङ्कार

३१—जहाँ पर विना कारण के कार्य की उत्पत्ति हो वहाँ 'विभावना नामक अलङ्कार होता है । जैसे, देखिये, विना महावर लगाये ही उस नायिका का पैर लाल है ।

विमर्श—विना कारण से कार्य का होना 'विभावना' है जैसाकि जयदेव ने लिखा है—

"विभावना विनापि चेत् कारणं कार्यजन्म चेत् ।"

अर्थात् जहाँ पर कारण के विना भी कार्य की उत्पत्ति का वर्णन किया जाता है वहाँ 'विभावना' नामक अलङ्कार होता है । यह नियम है कि पहले कारण होता है बाद में कार्य । बिना कारण के कार्य नहीं होता, किन्तु जहाँ बिना कारण के भी कार्य हो वहाँ 'विभावना' नामक अलङ्कार होता है ।

उदाहरण जैसे—

"पश्य लाक्षारसासिक्तं रक्तं तच्चरणद्वयम् ।"

कोई नायक नायिका के प्रति कह रहा है कि देखो, उस नायिका के दोनों

(३२) विशेषोक्तिः

विशेषोक्तिरनुत्पत्तिः कार्यस्य सति कारणे।
नमन्तमपि धीमन्तं न लङ्घयति कश्चन ।।५३।।

पैर विना महावर लगाये ही लाल हैं। विना महावर लगाये पैर लाल नहीं हो सकते, किन्तु यहाँ विना महावर के ही नायिका के पैरों की लालिमा का वर्णन है। अतः यहाँ 'विभावना' अलङ्कार है।

३२—विशेषोक्ति अलङ्कार

३३—जहाँ पर कारण के होते हुए भी कार्य की उत्पत्ति न हो वहाँ 'विशेषोक्ति' अलङ्कार होता है। जैसे, बुद्धिमान् मनुष्य के झुकने पर भी कोई उसे लांघ नहीं सकता। यहाँ विशेषोक्ति अलङ्कार है।

विमर्श—कारण के पश्चात् कार्य की उत्पत्ति देखी जाती है, किन्तु कारण के होते हुए कार्य की उत्पत्ति न पाया जाना 'विशेषोक्ति' है। जैसा कि जयदेव ने लिखा है—

"विशेषोक्तिरनत्पत्तिः कार्यस्य कारणे सति।"

अर्थात् कारण के होते हुए भी जहाँ कार्य की उत्पत्ति न हो, वहाँ पर 'विशेषोक्ति' नामक अलङ्कार होता है। जैसे—

नमन्तमपि धीमन्तं न लङ्घयति कश्चन।"

अर्थात् बुद्धिमान् व्यक्ति के झुकने पर भी कोई उनका उल्लङ्घन नहीं कर सकता। भाव यह कि जो वस्तु झुक जाती है उसका उल्लंघन सरलता से किया जा सकता है अर्थात् झुके हुए को लांघा जा सकता है किन्तु बुद्धिमान् पुरुष के झुकने पर भी कोई लांघ नहीं सकता अर्थात् बुद्धिमान् व्यक्ति विनम्र होता है अतः विनम्र होने पर भी उनका उल्लङ्घन कोई नहीं कर सकता। यहाँ पर 'झुकना' कारण के होते हुए भी 'लांघना' कार्य नहीं होने से 'विशेषोक्ति' नामक अलङ्कार है।

विशेषोक्ति का अन्य उदाहरण—

धनिनोऽपि निरुन्मादा युवानोऽपि न चञ्चलाः।
प्रभवोप्यप्रमत्तास्ते महामहिमशालिनः॥

(३३) कारणमालालङ्कारः

गुम्फः कारणमाला स्याद्यथाप्राक्प्रान्तकारणैः ।
नयेन श्रीः श्रिया त्यागस्त्यागेन विपुलं यशः ।।५४।।

महामहिमशाली पुरुष धनी होते हुए भी उन्माद से रहित, युवा (जवान) होकर भी चञ्चलता से रहित, प्रभुता से युक्त होते हुए भी प्रमाद से रहित होते हैं अर्थात् महामहिमशाली होने के कारण धनी, युवक और प्रभु निरुन्मादी, चञ्चलता-रहित एवं अप्रमादी होते हैं यहाँ पर धन, युवावस्था और प्रभुता रूप कारण के होते हुए भी उन्माद, चञ्चलता एवं प्रमाद रूप कार्य का अभाव बताया गया है। अतः विशेषोक्ति अलंकार है।

विभावना और विशेषोक्ति—

विभावना और विशेषोक्ति दोनों अलङ्कार कार्य-कारण पर आश्रित विरोधमूलक अलङ्कार हैं। किन्तु दोनों में अन्तर यह है कि 'विभावना' में कारण के बिना भी कार्य की उत्पत्ति देखी जाती है जबकि 'विशेषोक्ति' में कारण के होते हुए भी कार्य की उत्पत्ति नहीं पायी जाती। दूसरे विभावना अलङ्कार का चमत्कार कार्योत्पत्ति वाले अंश में होता है जबकि 'विशेषोक्ति' में वह चमत्कार कार्य की अनुत्पत्ति वाले भाग में पाया जाता है। विभावना में कारण का अभाव होता है और विशेषोक्ति में कार्य का अभाव होता है।

३३—कारणमाला अलङ्कार

३३—जहाँ पर पूर्व पूर्व पद बाद में आने वाले उत्तर उत्तर पद का कारण हो वहाँ 'कारणमाला' नामक अलङ्कार होता है। जैसे, नीति से लक्ष्मी, लक्ष्मी से त्याग (दान) और दान से विपुल यश होता है। यहाँ 'कारणमाला' अलङ्कार है।

विमर्श—'कारणानाम् (हेतूनाम्) माला (पंक्तिः) कारणमाला' इस व्युत्पत्ति के अनुसार कारणों की माला (पंक्ति) होने पर 'कारणमाला' अलङ्कार होता है। जयदेव ने कारणमाला का लक्षण इस प्रकार किया है—

'गुम्फः कारणमाला स्याद्यथा प्राक्प्रान्तकारणैः'।

अर्थात् जहाँ पर उत्तर-उत्तर वस्तु के कारणरूप पूर्व-पूर्व वस्तु का गुम्फन

(३४) एकावली

गृहीत-मुक्त-रीत्यर्थ-श्रेणिरेकावली मता।
नेत्रे कर्णान्तविश्रान्ते कर्णौ दोर्मूलदोलिनौ ॥५५॥

अथवा पूर्व-पूर्व वस्तु के कारणरूप उत्तर-उत्तर वस्तु का गुम्फन हो, वहाँ 'कारणमाला' अलङ्कार होता है। इस प्रकार 'कारणमाला' दो प्रकार का होता है।

पहला—'जहाँ पूर्व पूर्व वस्तु उत्तर-उत्तर का कारण होता है' प्रथम प्रकार के कारणमाला का उदाहरण देते हैं—

"नयेन श्रीः श्रिया त्यागस्त्यागेन विपुलं यशः"

अर्थात् नीति से लक्ष्मी, लक्ष्मी से त्याग और त्याग से विपुल यश की प्राप्ति होती है। इस उदाहरण में पूर्व-पूर्व नीति, लक्ष्मी और त्याग पद उत्तर-उत्तर लक्ष्मी, दान और यश पदों के कारण रूप में वर्णित हैं अतः यहाँ 'कारण-माला' नामक अलङ्कार है।

दूसरा—'जहाँ पर उत्तर-उत्तर वस्तु पूर्व-पूर्व कारण होना है' द्वितीय प्रकार के कारणमाला का उदाहरण कुवलयानन्द में निम्न प्रकार दिया है—

भवन्ति नरकाः पापात्, पापं दारिद्र्यसम्भवम्।
दारिद्र्यमप्रदानेन, तस्माद्दानपरो भवेत्॥

अर्थात् पाप से नरक मिलता है, दरिद्रता से पाप होता है और दान न देने के कारण दरिद्रता आती है, इसलिए सदा दानशील होना चाहिये। यहाँ पूर्व-पूर्व नरक, पाप और दरिद्रता के कारण रूप में उत्तर-उत्तर पद पाप, दारिद्र्य और अदान का वर्णन है अतः यहाँ पर 'कारणमाला' अलङ्कार है।

३४—एकावली अलङ्कार

३४—विशेषण और विशेष्य रूप में ग्रहण और त्याग की रीति की परम्परा को 'एकावली' कहते हैं। जैसे नेत्र कान तक लम्बे हैं और कान दोनों हाथ रूपी स्तम्भ (भुजाओं) पर हिल रहे हैं। यहाँ एकावली है।

विमर्श—जिस प्रकार हार में मोती गुंफित होते हैं उसी प्रकार जहाँ पर पदार्थ के विशेषण-विशेष्य-भाव के ग्रहण एवं त्याग की अवली (पंक्ति) होती है वहाँ 'एकावली' होती है। जैसे जयदेव ने लिखा है—

(३५) मालादीपकालङ्कारः

दीपकैकावलीयोगात् मालादीपकमुच्यते ।
स्मरेण हृदये तस्यास्तेन त्वयि कृता स्थितिः ॥५६॥

'गृहीतमुक्तरीत्यर्थश्रेणिरेकावली मता ।'

अर्थात् ग्रहण और मुक्ति की रीति से निवद्ध अर्थ-परम्परा को 'एकावली' अलंकार कहते हैं। भाव यह कि जहाँ पर पूर्व-पूर्व पद का उत्तर-उत्तर पद के विशेषण या विशेष्य रूप ग्रहण या त्याग किया जाता है वहाँ 'एकावली' अलकार होता है। जैसे—

'नेत्रे कर्णान्तविश्रान्ते कर्णौ दोर्मूलदोलिनौ ।'

अर्थात् नेत्र तो कानों तक फैले हैं और कान भुजाओं के मूल तक दोलायित हैं। यहाँ पर नेत्र के विशेषण रूप में 'कर्ण' पद का प्रयोग किया है। फिर उस 'कर्ण' पद को अगले वाक्य में विशेष्य वना दिया गया है। इस प्रकार यहाँ पहला 'कर्ण' पद का विशेषण रूप में ग्रहण बाद में विशेपण रूप से मुक्त होकर विशेष्य रूप में गृहीत होने से 'एकावली' अलंकार है। एकावली भी दो प्रकार की होती है किन्तु जयदेव ने एक ही प्रकार का उदाहरण दिया है। द्वितीय प्रकार की एकावली का उदाहरण विश्वनाथ ने इस प्रकार दिया है—

न तज्जलं यन्न सुचारुपङ्कजम्,
न पङ्कजं तद् यदलीनषट्पदम् ।
न षट्पदोऽसौ न जुगुञ्ज यः कलं,
न गुञ्जितं तन्न जहार यन्मनः ॥

इस उदाहरण में पूर्व-पूर्व का निषेघ किया गया है। अतः यहाँ द्वितीय प्रकार की एकावली है।

एकावली और कारणमाला—

दोनों ही शृङ्खलामूलक अलंकार है। दोनों में ही पूर्व पद का उत्तर पद से सम्बन्ध होता है। किन्तु 'एकावली' में यह सम्वन्ध विशेषण-विशेष्य भाव के रूप में होता है जवकि 'कारणमाला' में यह सम्बन्ध कार्य-कारण भाव के रूप में होता है।

(३५) मालादीपक अलङ्कार

३४—'दीपक' और 'एकावली' के योग अर्थात् एक साथ होने पर

(३६) परिसंख्यालङ्कारः

परिसंख्या निषिध्यैकमेकस्मिन् वस्तुयंत्रणम् ।
स्नेहक्षयः प्रदीपेषु स्वान्तेषु न नतभ्रुवाम् ।।५७।।

'मालादीपक' अलङ्कार होता है। जैसे, उस नायिका के हृदय में कामदेव ने स्थान बना लिया है और उस ने आपके हृदय में निवास बना लिया है। यहाँ 'मालादींपक' अलङ्कार है।

विमर्श—जयदेव ने मालादीपक का लक्षण लिखा है—

'दीपकैकावलीयोगात् मालादीपकमुच्यते ।'

'दीपक' और 'एकावली' के योग को 'मालादीपक' कहते हैं। तात्पर्य यह कि जहाँ पर दीपक और एकावली इन दोनों अलङ्कारों के योम (अर्थात् एक साथ स्थिति) हो, वहाँ 'मालादीपक' नामक अलङ्कार होता है। जैसे—

स्मरेण हृदये तस्यास्तेन त्वयि कृता स्थितिः ।'

"कोई दूती नायक से कह रही है कि हे नायक ! कामदेव ने उस नायिका के हृदय में अपना स्थान बना लिया है और उस नायिका के हृदय ने आप में अपनी स्थिति बनाली है।"

यहाँ पर 'स्थिति' पद का सम्वन्ध 'हृदय' और 'नायक' दोनों के साथ होने से दीपक अलंकार है। यहाँ पर हृदय को पहले कामदेव का आधार बताया गया है, फिर उसी हृदय को नायक का आधेय बताया गया है अतः 'एकावली' अलंकार हुआ। इस प्रकार दीपक और एकावली दोनों अलंकारों के योग होने से 'मालादीपक' नामक अलंकार है।

३६—परिसंख्या अलङ्कार

३६—किसी भी वस्तु का एक स्थान पर निषेध बतलाकर दूसरे स्थान पर उसी वस्तु की सत्ता (अस्तित्व) बताना 'परिसंख्या' अलंकार होता है। जैसे, दीपकों में स्नेह (तेल) का क्षय हो गया है किन्तु रमणियों के हृदय में स्नेह (प्रेम) का क्षय नहीं हुआ। यहाँ 'परिसंख्या' अलंकार है।

(३७) प्रतीपालङ्कारः

प्रतीपमुमानस्य हीनत्वमुपमेयतः ।
दृष्टं चेद्वदनं तस्याः किं पद्मेन किमिन्दुना ॥

विमर्श—जयदेव ने परिसंख्या अलंकार का लक्षण निम्नप्रकार दिया है—

'परिसंख्या निषिध्यैकमेकस्मिन् वस्तुयन्त्रणम् ।'

अर्थात् जब किसी एक वस्तु का किसी एक स्थान पर निषेध करके दूसरे स्थान पर उसी वस्तु के अस्तित्व को कहा जाता है, तब वहाँ 'परिसंख्या' नामक अलंकार होता है । उदाहरण जैसे—

'स्नेहक्षयः प्रदीपेषु न स्वान्तेषु नतभ्रुवाम् ।'

अर्थात् 'दीपकों में स्नेह (तेल) का क्षय होता था, रमणियों के हृदय में स्नेह (प्रेम) का क्षय नहीं होता था ।'

श्लेष के द्वारा 'स्नेह' शब्द के दो अर्थ होते हैं—प्रेम और तेल । यहाँ पर स्नेह रूप वस्तु का दीपक में अभाव वताया गया है और रमणियों के हृदय में उसकी सत्ता वताई गयी है अतः यहाँ पर 'परिसंख्या' अलंकार है । परिसंख्या अलंकार के प्रयोग के लिए सुवन्धु, बाण, त्रिविक्रमभट्ट अत्यन्त प्रसिद्ध हैं । वाण का परिसंख्या अलङ्कार का एक उदाहरण देखिये—

"यस्मिश्च राजनि जितजगति पालयति महीं चित्रकर्मसु वर्णसंकराः, चापेषु गुणच्छेदाः, छत्रेषु कनकदण्डा,:.............न प्रजानामासन् ।"

जिस राजा के पृथ्वी का पालन करते हुए चित्रकर्म में ही वर्ण (रङ्ग) का सङ्कर (मिश्रण) होता था, प्रजा में कोई वर्णसंकर न थी । धनुष में ही गुण (डोरी) का छेदन (कटना) होता था । प्रजा के गुणों का नाश नहीं होता था, छातें में ही कनक (सुवर्ण, सोने) का दण्ड था, प्रजा में कोई दण्ड नहीं था ।

३७—प्रतीप अलङ्कार

३७—जहाँ पर उपमेय की अपेक्षा उपमान की हीनता वताई जाय, वहाँ पर 'प्रतीप' अलङ्कार होता है । जैसे उस नायिका के मुख को देख लेने पर कमल और चन्द्रमा से क्या लाभ ? यहाँ 'प्रतीप' अलङ्कार है ।

विमर्श—जयदेव ने 'प्रतीप' अलंकार का लक्षण दिया है—

(३८) तद्गुणालङ्कारः

तद्गुणः स्वगुणत्यागादन्यतः स्वगुणोदयः ।
पद्मरागारुणं नासा मौक्तिकं तेऽधराश्रितम् ।।

"प्रतीपमुपमानस्य हीनत्वमुपेयतः ।"

अर्थात् उपमेय की अपेक्षा उपमान की न्यूनता बताये जाने पर 'प्रतीप' नामक अलङ्कार होता है, सामान्यतः उपमान उपमेय की अपेक्षा श्रेष्ठ होता है किन्तु जहाँ इसके विपरीत उपमान की उपमेय से हीनता बताई जावे, वहाँ 'प्रतीप' अलङ्कार होता है । जैसे—

'दृष्टं चेद्वदनं तस्या किं पद्मेन किमिन्दुना ।'

अर्थात् यदि उस नायिका का मुख देख लिया तो कमल और चन्द्रमा को देखने की क्या आवश्यकता है ? तात्पर्य यह कि उन नायिका का मुख चन्द्रमा और कमल की अपेक्षा अधिक सुन्दर है । यहाँ उपमेय मुख की अपेक्षा उपमान कमल और चन्द्रमा की हीनता का वर्णन है । अतः यहाँ पर 'प्रतीप' नामक अलङ्कार है ।

प्रतीप और उपमा—

प्रतीप अलंकार उपमा का (उलटा) विरोधी अलङ्कार है अर्थात् उपमा में जो उपमान होता है वह प्रतीप में उपमेय हो जाता है और उपमा में जो उपमेय होता है वह प्रतीप में उपमान हो जाता है । तात्पर्य यह कि उपमा में प्रस्तुत (वर्ण्य) उपमेय होता है और अप्रस्तुत (अवर्ण्य) उपमान होता है जबकि प्रतीप में अप्रस्तुत उपमेय होता है और प्रस्तुत उपमान होता है ।

प्रतीप और व्यतिरेक—

दोनों ही साधर्म्यमूलक अलङ्कार है । किन्तु प्रतींप केवल साधर्म्य में होता है जबकि उपमा साधर्म्य और वैधर्म्य दोनों में होता है । प्रतीप में उपमेय की व्यर्थता बताकर उसकी भर्त्सना की जाती है या उपमान को उपमेय बना दिया जाता है जबकि व्यतिरेक में उपमेय को उपमान से न्यून या अधिक बताया जाता है ।

३८—तद्गुण अलङ्कार

३८—जहाँ पर एक पदार्थ अपने गुण को त्यागकर दूसरे के गुण को ग्रहण

करना वर्णित हो वहाँ 'तद्गुण' अलंकार होता है। जैसे तुम्हारे अधर पर लटकता हुआ नासाभरण पद्मराग की लालिमा के समान है।

विमर्श—जयदेव ने 'तद्गुण' का लक्षण निम्नप्रकार दिया है—

'तद्गुणः स्वगुणत्यागादन्यतः स्वगुणोदयः।'

अर्थात् यहाँ पर एक वस्तु अपने गुण को छोड़कर दूसरे के गुण को ग्रहण कर लेती है वहाँ 'तद्गुण' नामक अलङ्कार लेता है। जैसे—

'पद्मरागारुणं नासामौक्तिकं तेऽधराश्रितम्।'

अर्थात् तुम्हारी ओठों पर लटकता हुआ नासाभरण (बुलाक) पद्मराग की लालिमा को धारण करता है। तात्पर्य यह कि नायिका के ओठ लाल हैं उसने नाक में जो बेसर पहन रखी है उसके मोती ओठ की लालिमा से युक्त होकर पद्मराग के समान लग रहे हैं। यहाँ पर नासाभरण की मोती अपने श्वेत गुण का परित्याग कर नायिका के ओठ की लालिमा को ग्रहण कर लेता है। अतः यहाँ पर 'तद्गुण' नामक अलंकार है।

छन्द-परिचय

आगरा विश्वविद्यालय में बी० ए० में निर्धारित छन्द—

(१) आर्या, (२) श्लोक (अनुष्टुप्), (३) इन्द्रवज्रा, (४) उपेन्द्रवज्रा, (५) उपजाति, (६) वंशस्थ, (७) वसन्ततिलका, (८) मालिनी, (९) मन्दाक्रान्ता, (१०) शिखरिणी, (११) शार्दूलविक्रीडित (१२), स्रग्धरा।

गोरखपुर विश्वविद्यालय में बी० ए० में निर्धारित छन्द—

(१) अनुष्टुप्, (२), आर्या, (३) इन्द्रवज्रा, (४) उपेन्द्रवज्रा, (५) उपजाति, (६) वंशस्थ, (७) द्रुतविलम्बित, (८) भुजङ्गप्रयात, वसन्ततिलका, (१०) मालिनी, (११) मन्दाक्रान्ता, (१२) शिखरिणी, (१३) शार्दूलविक्रीडित, (१४) स्रग्धरा, (१५) पुष्पिताग्रा।

छन्दो विमर्शः

संस्कृत साहित्य में छन्दःशास्त्र का महत्त्वपूर्ण स्थान है। छन्दःशास्त्र वेदों के छः अङ्गों में से एक अङ्ग है। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष वेद के ये छः अङ्ग वताये गये है—

'शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दसां चयः।
ज्योतिषामयनं चैव वेदाङ्गानि षडेव तु॥'

वेद के इन छः अङ्गों में से छन्द को वेद का पाद कहा गया है—

'छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ कथ्यते।'

पादस्थानीय होने के कारण छन्द परम पूजनीय हैं। जिस प्रकार लोक में मनुष्य विना पैर के पंगु है उसी प्रकार काव्य-जगत् में छन्दःशास्त्र के ज्ञान के विना मनुष्य पंगु के समान है। विना छन्दःशास्त्र के ज्ञान के कोई भी शुद्ध एवं श्रेष्ठ काव्य-रचना नहीं कर सकता। अतः छन्दःशास्त्र का ज्ञान मनुष्य के लिए परमावश्यक है।

छन्दःशास्त्र के प्रथम आचार्य महर्षि पिङ्गल हैं। इन्होंने वैदिक एवं लौकिक दोनों प्रकार के छन्दों की विवेचना की है। इनके ग्रन्थ का नाम 'छन्दःसूत्र' है। ये शेषजी के अवतार माने जाते थे। षड्गुरुशिष्य के अनुसार ये पाणिनि के अनुज थे। पिङ्गल के 'छन्दःसूत्र' में काश्यप, यास्क आदि आचार्यों का उल्लेख है। इससे ज्ञात होता है कि इनके पूर्व भी छन्दःशास्त्र के अनेक आचार्य थे, किन्तु उनके ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं है। अतः छन्दःशास्त्र के प्रथम आचार्य पिङ्गल माने जाते हैं। पञ्चतन्त्र के अनुसार कहा जाता है कि छन्दःशास्त्र के ज्ञाता महर्षि पिङ्गल मुनि को समुद्र के तट पर मगर ने मार डाला था—

'छन्दो ज्ञाननिधिं जघान मकरो वेलातटे पिङ्गलम्।'

(पञ्चतन्त्र, मित्रसम्प्राप्ति)

छन्द-भेद

अक्षर परिमाण को छन्द कहते हैं। छन्दःशास्त्र में वर्ण, मात्रा, यति आदि के नियमित व्यवस्था का वर्णन मिलता है। अग्निपुराण में चार चरण वाली रचना को पद्य कहा गया है और पद्य के दो भेद किये गये हैं—वृत्त और जाति। जिसमें नियताक्षर संख्या को वृत्त और मात्रा-गणना को जाति बताया गया है। छन्दोमञ्जरी में भी इसी प्रकार का उल्लेख मिलता है कि चार चरण वाली रचना को पद्य कहते हैं और उसके दो भेद होते हैं—वृत्त और जाति। उनमें नियताक्षर संख्या को वृत्त और मात्रा-गणना को जाति कहते हैं—

'पद्यं चतुष्पदं तच्च वृत्तं जातिरिति द्विधा।
वृत्तमक्षरसंख्यातं जातिर्मात्राकृता भवेत्॥'

(छन्दोमञ्जरी)

वृत्तरत्नाकर के अनुसार छन्द दो भागों में विभक्त हैं—वैदिक और लौकिक। उनमें से लौकिक छन्द के दो भेद किये गये हैं—वर्णिक और मात्रिक। इनमें वर्णिक को वृत्त और मात्रिक को जाति कहा जाता हैं।

पिङ्गलादिभिराचार्यैः यदुक्तं लौकिकं द्विधा।
मात्रावर्णविभेदेन छन्दस्तदिह कथ्यते॥

(वृत्तरत्नाकार)

छन्दशास्त्र में वृत्त के तीन भेद माने गये हैं—सम, अर्धसम, और विषम। जिसके चारों चरणों में समान लक्षण लक्षित हों उसे समवृत्त कहते हैं, जिसके प्रथम और तृतीय में समान तथा द्वितीय और चतुर्थ में समान अक्षर हों, वह अर्द्धसम होता हैं और जिसके चारों चरणों में एक दूसरे से भिन्न लक्षण लक्षित हों, उसे विषम वृत्त कहते हैं। वृत्तों की यह अक्षरगणना गुरु-लघु वर्णों के आधार पर होती हैं। किसी अक्षर के उच्चारण में व्यतीत होने वाले समय से उस अक्षर की मात्रा का वोध होता हैं। दीर्घ मात्रा वाले अक्षर के उच्चारण में लघु मात्रा के अक्षर से दुगुना समय लगता हैं। व्यंजन की अर्द्धमात्रा होती हैं। इस प्रकार लघु स्वर की एक मात्रा, दीर्घ एवं संयुक्त स्वरों की दो मात्राएं होती हैं। संगीत और वेद में तीन मात्राओं का उच्चारण भी होता हैं, जिसे प्लुत कहते हैं।

एकमात्रो भवेद्ह्रस्वः द्विमात्रो दीर्घ उच्यते।
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयः व्यञ्जनञ्चार्द्धमात्रकम्॥

त्रिक

तीन अक्षरों के संयोग को (त्रिक) गण कहते हैं। प्रस्तार भेद से इनके आठ रूप होते हैं। इन आठ त्रिकों (गणों) का एक-एक नाम दे दिया गया हैं। इन आठों त्रिकों के ज्ञान के लिये एक सूत्र हैं, जिसके आधार पर आठों गणों के स्वरूप का परिचय मिलता हैं।

'यमाताराजभानसलगाः'

इस सूत्र के आधार पर ही आठों त्रिकों का ज्ञान होता हैं। इस सूत्र में कुल दस अक्षर हैं। इन्हीं दस अक्षरों से समस्त काव्य जगत् भरा हुआ हैं। जिस प्रकार विष्णु से समस्त जगत् व्याप्त हैं। इन्हीं दस अक्षरों से आठ गण और लघु-गुरु वनते हैं। जैसे—यगण, मगण, तगण, रगण, जगण, भगण, नगण, ये आठ गण हैं और 'ल' से लघु तथा 'ग' से गुरु का ज्ञान होता हैं। इनमें से गुरु का चिन्ह वक्र रेखा (ऽ) और लघु का चिन्ह खड़ी रेखा (।) हैं। गणों का स्वरूप आगे दिये गये चक्र से स्पष्ट हो जायेगा।

वर्णिक गण

क्रम संख्या	नाम	रेखा रूप	वर्ण रूप	उदाहरण	शुभाशुभ	देवता
१	यगण	। ऽ ऽ	यमाता	पताका	शुभ	जल
१	मगण	ऽ ऽ ऽ	मातारा	मायावी	शुभ	पृथ्वी
३	तगण	ऽ ऽ ।	ताराज	पाताल	अशुभ	आकाश
४	रगण	ऽ । ऽ	राजभा	राधिका	अशुभ	अग्नि
५	जगण	। ऽ ।	जभान	जलेश	अशुभ	सूर्य
६	भगण	ऽ । ।	भानस	भूषण	शुभ	चन्द्र
७	नगण	। । ।	नसल	नवम	शुभ	स्वर्ग
८	सगण	। । ऽ	सलगाः	सरिता	अशुभ	अशुभ
९	लघु	।	ल	ल	—	—
१०	गुरु	ऽ	गाः	गा	—	—

लघु-गुरु-विचार

छन्दः शास्त्र में गुरु और लघु का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक हैं कौन से वर्ण कहाँ पर गुरु होता है, और कौन सा वर्ण लघु ? उसके लिये छन्दःशास्त्र में कुछ नियम बताये गये हैं। छन्दशास्त्र में कहीं-कहीं ह्रस्व वर्ण भी दीर्घ माने जाते हैं। कौन वर्ण कहाँ गुरु होता है और कहाँ लघु ? इसका विवेचन निम्न श्लोक में किया गया है—

सयुंक्ताद्यं दीर्घं सानुस्वारं विसर्गसन्मिश्रम् ।
विज्ञेयमक्षरं गुरु पादान्तस्थं विकल्पेन ॥

अर्थात् संयुक्त वर्ण के पूर्व का अक्षर, दीर्घ, अनुस्वार सहित, विसर्ग युक्त अक्षर गुरु माना जाता है और पाद के अन्त का लघु वर्ण भी विकल्प से (कभी-कभी) गुरु हो जाता है, जिनका उदाहरण क्रमशः निम्न प्रकार हैं—

१. **संयुक्ताद्यं—** संयुक्त वर्ण का पहला अक्षर यदि ह्रस्व हो तो वह गुरु माना जाता है। जैसे, विप्र, धर्म, सत्य, तत्र, भक्त आदि में वि, ध, स, त, भ, गुरु हैं।

२. **दीर्घम्—** दीर्घ वर्ण गुरु होता है। जैसे, राम, गीता, मूल, सेवा, में रा, गी, मू, सेवा गुरु हैं।

३. **सानुस्वारम्—** अनुस्वार से युक्त वर्ण गुरु होता हैं। जैसे सततं, धनं, गृहं में तं, नं, हं वर्ण गुरु हैं।

४. **विसर्गसन्मिश्रम्—** विसर्ग से युक्त वर्ण ह्रस्व भी गुरु माना जाता हैं। जैसे, रामः, हरिः, विधुः में मः, रिः, धुः वर्ण दीर्घ हैं।

५. **पादान्तस्थं विकल्पेन—** पद के अन्त में स्थित ह्रस्व वर्ण भी कभी-कभी गुरु हो जाता हैं। जैसे, 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव' में अन्तिम वर्ण 'व' गुरु हैं।

यति

पद्य को पढ़ते समय जहाँ पर जिह्वा को विश्राम दिया जाता हैं। उस स्थान को यति कहते हैं। 'यति' का जहाँ पर आवश्यक हो वहाँ यति न लगाने से 'यतिभंग' दोष होता है। यति को 'विच्छेद' तथा 'विराम' भी कहते हैं। पाद के अन्त में 'यति' लगाना आवश्यक हैं।

मात्रिक छन्द

मात्रिक छन्दों में मात्राओं की गणना की जाती है। मात्राओं की गणना के लिए गुरु-लघु का ज्ञान होना आवश्यक है। ऊपर गुरु-लघु का नियम बताया जा चुका है। मात्रिक छन्द को जाति भी कहते हैं। मात्रिक छन्दों में प्रथम 'आर्या' छन्द का लक्षण लिख रहे हैं—

यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽर्या॥

जिस छन्द के प्रथम एवं तृतीय चरण में १२ मात्राएँ हों और द्वितीय में १८ मात्राएँ तथा चतुर्थ चरण में १५ मात्राएँ हों, उसे 'आर्या' छन्द कहते हैं।

आर्या छन्द का उदाहरण—

ऽ·ऽ ऽ ऽ । ।ऽ =१२ ऽ । । ऽ ऽ । ऽ । ऽ ऽ ऽ =१८
यस्याः पादे प्रथमे, द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि।
ऽ ऽ । ऽ । ऽ ऽ =१२ । ऽ । ऽ ऽ । । । ऽ ऽ=१५
अष्टादश द्वितीये, चतुर्थके पञ्चदश साऽर्य्या॥

इस छन्द (श्लोक) के प्रथम चरण में १२ मात्राएँ, द्वितीय में १८ मात्राएँ, तृतीय में १२ मात्राएँ तथा चतुर्थ चरण में १५ मात्राएँ है अतः इसे 'आर्या' छन्द कहते हैं।

आर्या का दूसरा उदाहरण—

ऽ । । । ऽ । । । ऽ=१२ । । । । ऽ ऽ । ऽ । । । ऽ ऽ =१८
शान्तदिमाश्रमपदं, स्फुरति च बाहुः कुतः फलमिहास्य,
। । ऽ । । ऽ ऽ ऽ=१२ ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ ऽ =१५
अथवा भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र

स्तनयुगमश्रु स्नातं समीपतरवर्त्तिहृदयशोकाग्नेः।
चरति विमुक्ताहारं व्रतमिव रिपुस्त्रीणाम्॥

वर्णिक छन्द

मात्रिक छन्द के निरूपण करने के पश्चात् अब वर्णिक छन्द का निरूपण कर रहे हैं। वर्णिक छन्दों में वर्णों की गणना होती है। वर्णिक छन्दों में एक अक्षर से लेकर छब्बीस अक्षर तक के चरण वाले छन्द पाये जाते हैं। इस प्रकार वर्णिक छन्दों में कुल प्रमुख रूप से २६ छन्द हुये और प्रस्तार भेद से

इनके अनेक भेद होते हैं यहाँ पर हम केवल उन वर्णिक छन्दों का विवेचन करेगें जो विभिन्न विश्वविद्यालयों में बी० ए० के पाठ्यक्रम में निर्धारित हैं।

१. अनुष्टुप्* (अष्टाक्षरावृत्तिः)

अनुष्टुप् छन्द के प्रत्येक चरण में आठ अक्षर होते हैं। इसके कई भेद होते हैं। अनुष्टुप् को कुछ विद्वान् 'श्लोक' तथा कुछ विद्वान् 'पद्य' भी कहते हैं। वहाँ अनुष्टुप् के भेद श्लोक का लक्षण लिख रहे हैं—

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पंचमम्।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः॥

पद्य का लक्षण—

पञ्चमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयोः।
षष्ठं गुरु विजानीयादेतत्पद्यस्य लक्षणम्॥

अनुष्टुप् छन्द के प्रत्येक चरण में 'आठ' अक्षर होते हैं, उनमें से प्रत्येक चरण का छठा अक्षर गुरु और पाचवाँ अक्षर लघु होता है; द्वितीय और चतुर्थ चरण का सातवाँ अक्षर लघु तथा प्रथम एवं तृतीय चरण का सातवां गुरु होता है। शेष अक्षरों के लिये कोई नियम नहीं हैं।

अनुष्टुप् का उदाहरण—

५ ६ ७ ५६७
ऽ ऽ ऽ । । ऽ ऽ ऽ ऽ ऽऽ। । ऽ। ऽ
वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।

५ ६ ७ ५ ६ ७
। । ऽ । । ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ । । ऽ । ऽ
जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ॥

इस श्लोक के प्रत्येक चरण में आठ अक्षर हैं और प्रत्येक चरण का पाँचवाँ लघु तथा छठा गुरु हैं तथा द्वितीय, चतुर्थ चरण का सातवाँ लघु एवं प्रथम, तृतीय का सातवां गुरु हैं अतः इसे अनुष्टुप् छन्द कहेगें।

---

*पुष्पांकित छन्द आगरा विश्वविद्यालय के बी० ए० के पाठ्यक्रम में निर्धारित हैं।

५ ६ ७ ५ ६ ७
ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ । । ऽ ऽ ऽ । ऽ । ऽ
राम रामेति रामेति, रमे रामे मनोरमे ।

५ ६७ ५ ६७
। ऽ । ऽ । ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ । । ऽ । ऽ
सहस्त्र नाम तत्तुल्यं राम नाम वरानने ॥

उपर्युक्त श्लोक के प्रत्येक चरण में आठ अक्षर हैं और प्रत्येक चरण का पाचवाँ अक्षर लघु तथा छठा गुरु हैं तथा द्वितीय एवं चतुर्थ चरण का सातवाँ लघु एवं प्रथम, तृतीय का सातवां गुरु हैं अतः इसे अनुष्टुप् छन्द कहेगें।

२. इन्द्रवज्रा* (एकादशाक्षरा वृत्तिः)

इन्द्रवज्रा छन्द का लक्षण निम्नलिखित हैं—

'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः ।'

(छन्दोमञ्जरी एवं वृत्तरत्नाकर)

इन्द्रवज्रा छन्द के प्रत्येक चरण में ११ अक्षर होते हैं। इसके प्रत्येक चरण में दो तगण, एक जगण और अन्त में दो गुरु होते हैं।

उदाहरण—

तगण	तगण	नगण	गु० गु०
ऽ ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ऽ
स्यादिन्द्र	व ज्रा य	दि तौ ज	गौ गः

अन्य उदाहरण—

तगण	तगण	जगण	गु० गु०
ऽ ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ऽ
त त्रै व	गं गा य	मु ना त्रि	वे णी

तगण	तगण	जगण	गु० गु०
ऽ ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ऽ
गोदा व	री सिन्धु	स र स्व	ती च

तगण	तगण	जगण	गु० गु०
ऽ ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ऽ
स र्वा णि	तीर्थानि	व स न्ति	त त्र

तगण	तगण	जगण	गु० गु०
ऽ ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ऽ
यत्राच्यु	तो दा र	क था प्र	सं गः

इस श्लोक के प्रत्येक चरण में दो तगण एक जगण तथा अन्त में दो गुरु हैं अतः यह इन्द्रवज्रा छन्द हैं।

३. उपेन्द्रवज्रा*

उपेन्द्रवज्रा छन्द का लक्षण निम्नप्रकार हैं—

'उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततौ गौ'

(वृत्तरत्नाकर)

'उपेन्द्रवज्रा प्रथमे लघौ सा।'

(छन्दोमञ्जरी)

जिसके प्रत्येक चरण में एक जगण, एक तगण, एक जगण और अन्त में दो गुरु हों, उसे उपेन्द्रवज्रा छन्द कहते हैं। उपेन्द्रवज्रा के प्रत्येक चरण में ११ अक्षर होते हैं।

उदाहरण—

जगण	तगण	जगण	गु० गु०
। ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ऽ
उ पे न्द्र	व ज्रा प्र	थ मे ल	घौ सा

दूसरा उदाहरण—

जगण	तगण	जगण	गु० गु०
। ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ऽ ।	ऽ ऽ
त्व मे व	मा ता च	पि ता त्व	मे व

जगण	तगण	जगण	गु० गु०
। ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ऽ
त्व मे व	व न्धु श्च	स खा त्व	मे व ।

जगण	तगण	जगण	गु० गु०
। ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ऽ
त्व मे व	वि द्या द्र	वि णं त्व	मे व

जगण	तगण	जगण	गु० गु०
। ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ऽ
त्व मे व	स र्वं म	म दे व	दे व ॥

इस उदाहरण के प्रत्येक चरण में जगण, तगण, जगण तथा अन्त में दो गुरु हैं अतः यह उपेन्द्रवज्रा छन्द है।

अन्य उदाहरण—

१. सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता
परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
अहंकरोमीति वृथाभिमानः
स्वकर्म्मसूत्रग्रथितो हि लोकः॥

२. अलं महीपाल तव श्रमेण,
प्रयुक्तमप्यस्त्रमितो वृथा स्यात्।
न पादोपोन्मूलनशक्तिरंहः
शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य॥

५—उपजाति*

उपजाति छन्द का लक्षण निम्नलिखित है—

अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः॥
इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु वदन्ति जातिष्विदमेव नाम॥

(छन्दोमञ्जरी)

अव्यवहित पूर्व जो इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के लक्षण बताये जाते हैं, उन दोनों के लक्षणों से युक्त जिस छन्द के चरण हों, उसे उपजाति कहते हैं। इससे १६ प्रकार के छन्द बनते हैं।

उदाहरण—

तगण	तगण	जगण	गु० गु०	
S S I	S S I	I S I	S S	इन्द्रवज्रा
खादन्न	गच्छामि	हसन्न	जल्पे	

जगण	तगण	जगण	गु० गु०	
I S I	S S I	I S I	S S	उपेन्द्रवज्रा
गतं न	शोचामि	कृतं न	मन्ये	

तगण	तगण	जगण	गु० गु०	
S S I	S S I	I S I	S S	इन्द्रवज्रा
द्वाभ्यां तृ	तीयो न	भवानि	राजन्	

तगण	तगण	जगण	गु० गु०	
S S I	S S I	I S I	S S	इन्द्रवज्रा
किं कार	णं भोज	भवामि	मूर्खः	

इस उदाहरण के द्वितीय चरण में उपेन्द्रवज्रा तथा प्रथम, तृतीय एवं चतुर्थ चरणों में इन्द्रवज्रा छन्द का लक्षण हैं अतः यहाँ दोनों के मिश्रण से उपजाति छन्द हैं।

अन्य उदाहरण—

१. शमप्रधानेषु तपोवनेषु,
गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः।
स्पर्शानुकूला अपि चन्द्रकान्ता—
स्तदन्यतेजोऽभिभवाद् वमन्ति ॥

२. अथ प्रजानामधिपः प्रभाते,
जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्याम्।
वनाय पीतप्रतिबद्धवत्सां,
यशोधनो धेनुमृषेर्मुमोच ॥

३. येषां न विद्या तपो न दानं
ज्ञानं न शीलं गुणो न धर्मः ।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूताः
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥

४. यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः
स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः ।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः
सर्वे गुणाः कांचनमाश्रयन्ति ॥

६—वंशस्थविल* (द्वादशाक्षरा वृत्तिः)

वंशस्थ छन्द का लक्षण निम्नलिखित हैं—

'वदन्ति वंशस्थविलं जतौ जरौ ।'

(छन्दोमञ्जरी)

'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ ।'

(वृत्तरत्नाकर)

जिसके प्रत्येक चरण में एक जगण, एक तगण, एक जगण और एक रगण हों, उसे वंशस्थ छन्द कहते हैं। वंशस्थ के प्रत्येक चरण में १२ अक्षर होते हैं—

उदाहरण—

जगण	तगण	जगण	रगण
I S I	S S I	I S I	S I S
वदन्ति	वंशस्थ	विलंज	तौ जरौ

जगण	तगण	जगण	रगण
I S I	S S I	I S I	S I S
सु तं प	त न्तं प्र	समीक्ष्य	पावके

जगण	तगण	जगण	रगण
I S I	S S I	I S I	S I S
न बो ध	या मा स	पति प	तिव्रता

जगण	तगण	जगण	रगण
। ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ । ऽ
प ति व्र	ता शा प	भ ये न	पीड़ितो

जगण	तगण	जगण	रगण
। ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ । ऽ
हु ता श	नश्चन्द	न प ङ्क	शीतलः

इसके प्रत्येक चरण में जगण, तगण, जगण और रगण के क्रम से १२ वर्ण हैं अतः यह वंशस्थ छन्द है।

अन्य उदाहरण—

(१) भवन्ति नम्रस्तरवः फलागमैः—
नंवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्॥

(२) श्रियः कुरुणामधिपस्य पालनीं
प्रजासु वृत्तिं यमयुङ्क्त वेदितुम्।
स वर्णिलिङ्गी विदितः समाययौ
युधिष्ठिरं द्वैतवने वनेचरः॥

७—भुजंगप्रयातम् (द्वादशाक्षरा वृत्तिः)

भुजंगप्रयात का लक्षण निम्नप्रकार हैं—

भुजंगप्रयातं चतुर्भिर्यकारैः।'

(छन्दोमञ्जरी)

'भुजङ्गप्रयातं भवेद् यैश्चतुर्भिः।'

(वृत्तरत्नाकर)

जिसके प्रत्येक चरण में चार यगण हों, उसे भुजंगप्रयात छन्द कहते हैं। भुजंगप्रयात छन्द के प्रत्येक चरण में १२ अक्षर होते है—

उदाहरण—

यगण	यगण	यगण	यगण
ISS	ISS	ISS	ISS
भुजङ्ग	प्रयातं	चतुर्भि	र्यंकारैः

दूसरा उदाहरण—

यगण	यगण	यगण	यगण
ISS	ISS	ISS	ISS
विना गो	रसं को	रसो भो	जनानाम्
यगण	यगण	यगण	यगण
ISS	ISS	ISS	ISS
विना गो	रसं को	रसो भू	पतीनाम्
यगण	यगण	यगण	यगण
ISS	ISS	ISS	ISS
विना गो	रसं को	रसः प	ण्डितानाम्
यगण	यगण	यगण	यगण
ISS	ISS	ISS	ISS
विना गो	रसं को	रसः का	मिनीनाम्

इसके प्रत्येक चरण में यगण, यगण, यगण, और यगण हैं तथा प्रत्येक चरण में १२ अक्षर हैं। इसलिए भुजंगप्रयात छन्द है।

अन्य उदाहरण—

१. नमामीशमीशान निर्वाण-रूपं
विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपम्।
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं
चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं॥

२. नमस्तेऽस्तु गंगे त्वदङ्ग-प्रसंगा—
द्भुजंगास्तुरंगाः कुरंगाः प्लवंगाः।
अनंगारिरङ्गा सगंगा शिवङ्गा
भुजंगाधिपांगी कृतांगा भवन्ति ॥

८—द्रुतविलम्बित

"द्रुतविलम्बित" छन्द का लक्षण निम्नप्रकार है—

"द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ"

(छन्दोमञ्जरी, एवं वृत्तरत्नाकर)

जिस श्लोक के प्रत्येक चरण में नगण, भगण, भगण, और रगण हों उसे द्रुतविलम्बित छन्द कहते हैं। इसके प्रत्येक चरण में १२ अक्षर होते हैं—

उदाहरण—

नगण	भगण	भगण	रगण
I I I	S I I	S I I	S I S
द्रुतवि	लम्बितं	माह न	भौ भरौ

दूसरा उदाहरण—

नगण	भगण	भगण	रगण
I I I	S I I	S I I	S I S
विपदि	धैर्यम	थाभ्युद	ये क्षमा

नगण	भगण	भगण	रगण
I I I	S I I	S I I	S I S
सदसि	वाक्पटु	ता युधि	विक्रमः

नगण	भगण	भगण	रगण
I I I	S I I	S I I	S I S
यशसि	चाभिरु	चिर्व्यंस	नं श्रुतौ,

नगण	भगण	भगण	रगण
।।।	ऽ।।	ऽ।।	ऽ।ऽ
प्रकृति	सिद्धमि	दं हि	महात्मनाम् ॥

अन्य उदाहरण :—

अभिमुखे मयि संवृतमीक्षणं
हसितमन्यनिमित्तकृतोदयम् ।
विनयवारितवृत्तिरतस्तया
न विवृत्तो मदनो न च संवृतः ॥

९—बसन्ततिलका* (चतुर्दशाक्षरावृतिः)

वसन्ततिलका छन्द का लक्षण निम्नलिखित हैं—

"ज्ञेयं वसन्ततिलकं तभजा जगौ गः ! ।"

(छन्दोमञ्जरी)

"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ।"

(वृत्तरत्नाकर)

जिसके प्रत्येक चरण में एक तगण, एक भगण, दो जगण, और अन्त में दो गुरु हों उसे 'वसन्ततिलका' छन्द कहते हैं। वसन्ततिलका के प्रत्येक चरण में १४ अक्षर होते हैं—

उदाहरण—

तगण	भगण	जगण	जगण	गु० गु०
ऽऽ।	ऽ।।	।ऽ।	।ऽ।	ऽ ऽ
ज्ञेया व	सन्तति	लका त	भजाज	गौ गः

दूसरा उदाहरण—

तगण	भगण	जगण	जगण	गु० गु०
ऽऽ।	ऽ।।	।ऽ।	।ऽ।	ऽ ऽ
रात्रिर्ग	मिष्यति	भविष्य	ति सुप्र	भातम् ।

तगण	भगण	जगण	जगण	गु० गु०
ऽ ऽ ।	ऽ । ।	। ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ऽ
भास्वानु	देष्यति	हसिष्य	ति पङ्क	ज श्रीः

तगण	भगण	जगण	जगण	गु० गु०
ऽ ऽ ।	ऽ । ।	। ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ऽ
इत्थं वि	चिन्तय	ति कोश	गते द्वि	रे फे

तगण	भगण	जगण	जगण	गु० गु०
ऽ ऽ ।	ऽ । ।	। ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ऽ
हा हन्त	हन्त न	लिनीं ग	ज उज्ज	हा र

इसके प्रत्येक चरण पें तगण, भगण, जगण, जगण और अन्त में दो गुरु है। वर्णों के क्रम से १४ वर्ण होने से यह 'वसन्ततिलका' छन्द हैं।

अन्य उदाहरण—

१. उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः
दैवं प्रधानमिति कापुरुषा वदन्ति।
दैवं विहाय कुरु पौरुषमात्मक्त्या
यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः ॥

२. निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवंतु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः।

३. नानापुराणनिगमागमसम्मतं य—
द्रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा
भाषा निबन्धमतिमंजुलमातनोति ॥

४. जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं,
सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्॥

१०—मालिनी* (पञ्चदशाक्षरा वृत्तिः)

'मालिनी' छन्द का लक्षण निम्नलिखित है—

"ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः"

(छन्दोमञ्जरी)

जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण, एक मगण, तथा दो यगण हो, उसे मालिनी छन्द कहते हैं। मालिनी के प्रत्येक चरण में १५ अक्षर होते हैं।

उदाहरण—

नगण	नगण	मगण	यगण	यगण
। । ।	। । ।	ऽ ऽ ऽ	। ऽ ऽ	। ऽ ऽ
न न म	य य यु	ते यं मा	लिनी भो	गिलौ कैः

दूसरा उदाहरण—

नगण	नगण	मगण	यगण	यगण
। । ।	। । ।	ऽ ऽ ऽ	। ऽ ऽ	। ऽ ऽ
स र सि	ज म नु	विद्धं शै	वलेना	पि रम्यम्

नगण	नगण	मगण	यगण	यगण
। । ।	। । ।	ऽ ऽ ऽ	। ऽ ।	। ऽ ऽ
मलिन	म पिहि	मांशोर्ल	क्ष्मलक्ष्मीं	तनोति।

नगण	नगण	मगण	यगय	मगण
। । ।	। । ।	ऽ ऽ ऽ	। ऽ ऽ	। ऽ ऽ
इयम	धि कम	नोज्ञा व	ल्कलेना	पि तन्वी

नगण	नगण	मगण	यगण	यगण
I I I	I I I	S S S	I S S	I S S
किमिव	हि मधु	राणां म	ण्डनं ना	कृतीनाम् ।

इसके प्रत्येक चरण में क्रमशः नगण, नगण, मगण, यगण, यगण, होते हैं और गणों के क्रम से १५ वर्ण हैं। अतः यह मालिनी छन्द हैं।

अन्य उदाहरण—

१. अतुलितबलधामं स्वर्णशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि॥

२. स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः,
प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेवंविधैव।
अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं
शमयति परितापं छायया संश्रितानाम्॥

११—शिखरिणी* (सप्तदशाक्षरा वृत्तिः)

शिखरिणी छन्द का लक्षण निम्नलिखित हैं—

"रसैः रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी"

(छन्दोमञ्जरी, वृत्तरत्नाकर)

जिसके प्रत्येक चरण में क्रम से एक यगण एक मगण एक नगण एक सगण, एक भगण, तथा अन्त में एक लघु तथा एक गुरु हो तथा ६ एव ११ पर 'यति' हो, उसे 'शिखरिणी' छन्द कहते हैं। इसके प्रत्येक चरण में १७ अक्षर होते हैं—

उदाहरण—

यगण	मगण	नगण	सगण	भगण	ल०	गु०
I S S	S S S	I I I	I I S	S I I	I	S
रसैः रु	द्रैश्छिन्ना	यमन	सभला	गः शिख	रि	णी

दूसरा उदाहरण—

यगण	मगण	नगण	सगण	भगण	ल० गु०
।SS	S SS	।।S	।।S	S।।	। S
कुपुत्रो	जायेत	क्वचिद	पि कुमा	ता न भ	व ति ।

इस उदाहरण में प्रत्येक चरण में क्रमशः यगण, मगण, नगण, सगण, भगण, और अन्त में लघु तथा गुरु वर्ण हैं। ६ और ११ अक्षर पर यति एवं प्रत्येक चरण में १७ वर्ण हैं। अतः यह शिखरिणी नामक छन्द है।

१. महाराज श्रीमन् जगति यशसा ते धवलिते,
पयः पारावारं परमपुरुषोऽयं मृगयते।
कपर्दी कैलासं कविवरमभौमं कुलिशभृत्,
कलानाथं राहुः कमलभवनो हंसमधुना॥

२. क्वचिद् भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्यङ्कशयनं।
क्वचिच्छकाहारः क्वचिदपि च शल्योदनरुचिः॥
क्वचित्कंथाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरो—
मनस्वी कार्यार्थी न गणयति सुखं न वा दुःखम्।

१२—मन्दाक्रान्ता*

मन्दाक्रान्ता छन्द का लक्षण निम्नलिखित हैं—

मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम्"

जिसके प्रत्येक चरण में एक मगण, एक भगण, एक नगण, दो तगण तथा अन्त में दो गुरु हों, और ४, ६, ७, वर्णों पर यति हो, उसे मन्दाक्रान्ता छन्द कहते हैं। मन्दाक्रान्ता छन्द में १७ वर्ण होते हैं।

उदाहरण—

मगण	भगण	नगण	तगण	तगण	गु० गु०
S S S	S ।।	।।।	SS।	S S।	S S:
मन्दाक्रा	न्ताम्बुधि	रसन.	गैर्मो भ	नौ तौ ग	युग्मम्।

दूसरा उदाहरण—

मगण	भगण	नगण	तगण	तगण	गु० गु०
ऽ ऽ ऽ	ऽ । ।	। । ।	ऽ ऽ ।	ऽ ऽ ।	ऽ ऽः
शन्ताका	रं भुज	गशय	नं पद्म	ना भंसु	रेश म्

मगण	भगण	नगण	तगण	तगण	गु० गु०
ऽ ऽ ऽ	ऽ । ।	। । ।	ऽ ऽ ।	ऽ ऽ ।	ऽ ऽ
विश्वाधा	रंग ग	नसदृ	शं मेघ	व र्णं शु	भाङ्गम् ।

मगण	भगण	नगण	तगण	तगण	गु० गु०
ऽ ऽ ऽ	ऽ । ।	।:।	ऽ ऽ ।	ऽ ऽ ।	ऽ ऽ
लक्ष्मीका	न्तं कम	लनय	नं योगि	भिर्ध्यान	गम्यम्

मगण	भगण	नगण	तगण	तगण	गु० गु०
ऽ ऽ ऽ	ऽ । ।	। । ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ऽ ।	ऽ ऽ
वन्दे वि	ष्णुं भव	भ य ह	रं सर्व	लोकैक	नाथम्

इस प्रकार इस उदाहरण में प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण, भगण, नगण, तगण, तगण और अन्त में दो गुरु, तथा वर्णों के अनुसार १७ वर्ण है और ४, ६, ७ पर 'यति' हैं। अतः यह मन्दाक्रान्ता छन्द हैं।

अन्य उदाहरण—

१. धन्याऽयोध्या दशरथनृपस्सा च माता च धन्या
धन्यो वंशो रघुकुलभवो यत्र रामावतारः।
धन्या वाणी कविवरमुखे रामनामप्रपन्ना
धन्यो लोके प्रतिदिनमसौ रामनाम शृणोति ॥

२. नन्वात्मानं बहु विगणयन्नात्मनैवावलम्बे
तत्कल्याणि त्वमपि नितरां मा गमाः कातरत्वम् ।
कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्तो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ।

३. नैतच्चित्रं यदयमुदधि श्यामसीमां धरित्री,—
मेकः कृत्स्नां नगरपरिघप्रांशुबाहुर्भुनक्ति ।
आशसन्ते सुरयुवतयो बद्धवैरा हि दैत्यै—
रस्याधिज्ये धनुषि विजयं पौरहूते च वज्रे ॥

१३—शार्दूलविक्रीडितम्*

(एकोनविंशत्यक्षरावृत्तिः)

"शार्दूलविक्रीडित" छन्द का लक्षण निम्नप्रकार है—

"सूर्याश्वैर्मसजस्ततः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्"

(छन्दोमञ्जरी, वृत्तरत्नाकर)

जिसके प्रत्येक चरण में क्रमशः एक मगण, एक सगण, एक जगण, एक सगण, दो तगण, तथा अन्त में एक गुरु हो, और ७ तथा १२ अक्षरों पर 'यंति' हों, उसे "शार्दूलविक्रीडित" छन्द कहते हैं। उस छन्द के प्रत्येक चरण में १९ अक्षर होते है।

उदाहरण—

मगण	सगण	जगण	सगण	तगण	तगण	गु०
ऽ ऽ ऽ	। । ऽ	। ऽ ।	। । ऽ	ऽ ऽ ।	ऽ ऽ ।	ऽ
सूर्याश्वै	र्मसज	स्ततःस	गुरवः	शार्दूल	विक्रीडि	तम् ।

· दूसरा उदाहरण—

मगण	सगण	जगण	सगण	तगण	तगण	गु०
ऽ ऽ ऽ	। । ऽ	। ऽ ।	। । ऽ	ऽ ऽ ।	ऽ ऽ ।	ऽ
कार्यासै	कतली	नहंस	मिथुना	स्रोतोव	हा मालि	नी

मगण	सगण	जगण	सगण	तगण	तगण	गु०
ऽ ऽ ऽ	। । ऽ	। ऽ ।	। । ऽ	ऽ । ऽ	ऽ ऽ ।	ऽ
पादास्ता	मभितो	निषण्ण	हरिणा	गौरीगु	रोःपाव	नाः

मगण	सगण	जगण	सगण	तगण	तगण गु०
ऽ ऽ ऽ	। । ऽ	। । ऽ	। । ऽ	ऽ ऽ ।	ऽ ऽ । ऽ
शाखाव	म्वितब	ल्कलस्य	च तरो	निर्मातु	मिच्छाम्य धः

मगण	सगण	जगण	सगण	तगण	तगण गु०
ऽ ऽ ऽ	। । ऽ	। ऽ ।	। । ऽ	ऽ ऽ ।	ऽ ऽ । ऽ
शृङ्गे क	ष्णमृग	स्य वाम	नयनं	कण्डूय	मानां भृ गीम्

इस प्रकार इस छन्द प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण और अन्त में एक गुरु हैं। और वर्ण के क्रम के अनुसार १९ वर्ण हैं तथा १२ और ७ पर यति हैं अतः यह 'शार्दूलविक्रीडितम्' छन्द हैं।

अन्य उदाहरण—

१. नैवं व्याकरणज्ञमेव पितरं स भ्रातरं तार्किकम्।
मीमासांनिपुणं नपुंसकमिति ज्ञात्वानिरस्तादरा॥
दूरात्संकुचितेव गच्छति पुनश्चाण्डालवच्छांदसम्।
काव्यालङ्कारणज्ञमेव कविता कांता वृणीते स्वयम्॥

२. या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या· शुभ्रवस्त्रावृत्ता
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना।
या ब्रह्माच्युतशंकरप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा॥

३. अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रो नु कान्तिप्रदः
शृङ्गारैकरसः स्वयं नु मदनो मासानुपुष्पाकरः।
वेदाभ्यासजडः कथं नु विषयाव्यावृत्तकौतूहलो
निर्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः॥

१४—स्रग्धरा* (एकविंशत्यक्षरावृत्तिः)

'स्रग्धरा' छन्द का लक्षण निम्नप्रकार हैं—

म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्

जिसके प्रत्येक चरण में क्रमशः एक मगण, एक रगण, एक भगण एक भगण, एक नगण, तीन यगण हों, तथा सात-सात अक्षरों पर 'यति' हो उसे 'स्रग्धरा' छन्द कहते हैं। स्रग्धरा छन्द के प्रत्येक चरण में २१ अक्षर होते हैं।

उदाहरण—

मगण	रगण	भगण	नगण	यगण	यगण	यगण
S S S	S I S	S I I	I I I	I S S	I S S	I S S
म्रभ्नैर्या	नां त्रये	ण त्रिमु	नियति	युता स्र	ग्धरा की	र्तितेयम्

दूसरा उदाहरण—

मगण	रगण	भगण	नगण	यगण	यगण	यगण
S S S	S I S	S I I	I I I	I S S	I S S	I S S
ग्रीवभ	ङ्गाभिरा	मं मुहु	रनुप	तति स्य	न्दने ब	द्धदृष्टिः

मगण	रगण	भगण	नगण	यगण	यगण	यगण
S S S	S I S	S I I	I I I	I S S	I S S	I S S
पश्चार्द्धे	न प्रवि	ष्टः शर	पतन	भयाद्भू	यसा पू	र्वकायम्

मगण	रगण	भगण	नगण	मगण	यगण	यगण
S S S	S I S	S I I	I I I	I S S	I S S	I S S
दर्भैर	र्धावली	ढ़ैःश्रम	विवृत्त	मुखभ्रं	शिभिःकी	र्णवर्त्मा

मगण	रगण	भगण	नगण	यगण	यगण	यगण
S S S	S I S	S I I	I I I	I S S	I S S	I S S
पश्योद	ग्रप्लुत	त्वाद्विय	तिब हु	तरं स्तो	कमुर्व्यां	प्रयाति ।।

इस उदाहरण के प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण, रगण, भगण, नगण,

यगण, यगण, यगण के क्रम से २१ वर्ण हैं और ७, ७, ७ पर यति हैं अतः यह 'स्रग्धरा' छन्द है।

अन्य उदाहरण—

१. रामं कामारिसेव्यं भवभयहरणं कालमत्तेभसिंहं,
योगीन्द्रं ज्ञानगम्यं गुणनिधिमजितं निर्गुणं निर्विकारम्।
मायातीतं सुरेशं खलवधनिरतं ब्रह्मवृन्दैकदेवं
वन्दे कंदावदातं सरसिजनयनं देवमुर्वीशरूपम्॥

२. या सृष्टिः स्रष्टुराद्या, वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री,
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस् ताभिरष्टाभिरीशः॥

१५—पुष्पिताग्रा

'पुष्पिताग्रा' का लक्षण निम्न प्रकार है—

"अयुजि नयुगरेफतो यकारो, युजि च न जौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा"

जिसके विषम (अर्थात् प्रथम और तृतीय) चरणों में नगण, नगण, रगण यगण हों और समचरण (अर्थात् द्वितीय और चतुर्थ) में नगण जगण जगण, रगण और गुरु हों, उसे 'पुष्पिताग्रा' छन्द कहते हैं—

उदाहरण—

नगण	नगण	रगण	यगण	
।।।	।।।	ऽ।ऽ	।ऽऽ	
परिप	ततिप	योनिधौ	पतंगः	
नगण	जगण	जगण	रगण	गु०
।।।	।ऽ।	।ऽ।	ऽ।ऽ	ऽ
सरसि	रुहामु	दरेपु	मत्तभृ	ङ्गः

नगण	नगण	रगण	यगण
।।।	।।।	ऽ।ऽ	।ऽऽ
उपव	नतरु	कोटरे	विहंगः ।

नगण	जगण	जगण	रगण गु०
।।।	।ऽ।	।ऽ।	ऽ।ऽ ऽः
तरुणि	जनेषु	शनैःश	नैरन ङ्गः ॥

इस छन्द के प्रथम और तृतीय चरण में नगण, नगण, रगण, यगण हैं और द्वितीय और चतुर्थ चरण में नगण, जगणः जगणः रगण और गुरु हैं अतः यह पुष्पिताग्रा छन्द हैं ।

अन्य उदाहरण—

तुरगखुरहतस्तथा हि रेणु
विटपविषक्तजलार्द्रं वल्कलेषु ।
पतति परिणतारुणप्रकाशः
शलभसमूह इवाश्रमद्रुमेषु ॥